वर्ष 16 **अंक 1** **अप्रैल 2009**

प्रमुख आलेख

अश्वनी
ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता

शरद सिन्हा और जितेन्द्र कुमार लोढ़ा
शैक्षिक उत्कर्ष के लिए गुणवत्ता में सुधार की लक्ष्यपरक प्रक्रिया

कुमार संजीव और अमित कुमार
बिहार की स्कूली शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन

अंचल गुप्ता और विशेष गुप्ता
महिला बाल श्रमिकों में बढ़ती हुई शिक्षा की भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन

प्रेरणा शर्मा
भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोध अध्ययन के नए आयाम

अन्य स्थाई स्तंभ

परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

संरक्षक

वेद प्रकाश

कुलपति, न्यूपा

संपादकीय सलाहकार मंडल

सोमदत्त दीक्षित

बी.सी. मेहता

श्री प्रकाश

अमरजीत सिन्हा

चांद किरण सलूजा

संपादक मंडल

जांध्याला बी. जी. तिलक

अरुण सी. मेहता

नलिनी जुनेजा

अकादमिक संपादक

एस.एम.आई.ए. जैदी

संपादक

सुभाष शर्मा

संपादन सहयोग

मनोज गौड़

उप प्रकाशन अधिकारी

प्रमोद रावत

प्रकाशन सहायक

अमित सिंघल

मानचित्रण

पी.एन. त्यागी

परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) की चतुर्मासी हिंदी पत्रिका है। यह वर्ष के अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में प्रकाशित की जाती है। संपादकीय विवरण के लिए कृपया आवरण (iii) देखें।

परिप्रेक्ष्य में प्रकाशित लेखों और अन्य सामग्री में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। न्यूपा की नीतियों और विचारों से उनका कोई संबंध नहीं है।

परिप्रेक्ष्य

शैक्षिक योजना और प्रशासन का सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

500 प्रतियां

© राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय, 2009

इस पत्रिका का प्रकाशन प्रति वर्ष अप्रैल, अगस्त और दिसंबर माह में होता है। इसकी प्रतियां चुनिंदा और इच्छुक व्यक्तियों तथा संस्थानों को नि:शुल्क भेजी जाती हैं। यह पत्रिका न्यूपा वेबसाइट - www.nuepa.org पर भी नि:शुल्क उपलब्ध है। इसे प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति और संस्थान निम्निलिखित पते पर आवेदन करें :

अकादमिक संपादक

परिप्रेक्ष्य

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा)
17-बी, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली-110 016

राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (न्यूपा) के लिए कुलसचिव, न्यूपा द्वारा प्रकाशित तथा बच्चन सिंह, बी-275, अवन्तिका, रोहिणी से. 1, नई दिल्ली द्वारा लेजर टाइपसैट होकर अनिल आफसेट एण्ड पैकेजिंग प्रा. लि. जवाहर नगर, नई दिल्ली, में न्यूपा के प्रकाशन विभाग द्वारा मुद्रित।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

विषय सूची

आलेख

अश्वनी
ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता 1

शरद सिन्हा और जितेन्द्र कुमार लोढ़ा
शैक्षिक उत्कर्ष के लिए गुणवत्ता में सुधार की लक्ष्यपरक प्रक्रिया 27

कुमार संजीव और अमित कुमार
बिहार की स्कूली शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन 43

अंचल गुप्ता और विशेष गुप्ता
महिला बाल श्रमिकों में बढ़ती हुई शिक्षा की भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन 59

प्रेरणा शर्मा
भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोध अध्ययन के लिए नए आयाम 69

शोध टिप्पणी / संवाद

दामोदर जैन
शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए व्यवहारिक दृष्टिकोण जरूरी 87

श्रुति आनंद
विभिन्न एशियाई देशों में स्त्री शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन 101

आर. एन. केवट
समेकित शिक्षा के अंतर्गत सामान्य एवं विशेष विद्यालयों में अध्ययनरत् विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन का अध्ययन 109

प्रवीन देवगन
बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य संबंध का अध्ययन 115

चिंतक और चिंतन

पंकज कुमार दुबे
लोकनायक जयप्रकाश नारायण की दृष्टि में ग्रामीण शिक्षा 125

समीक्षालेख

वीणा प्रसाद
विशिष्ट शिक्षा और विशिष्ट बच्चों का शिक्षा की मुख्य धारा में समावेशन 133

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता*

अश्वनी**

सारांश

भारतीय संस्कृति में सामुदायिक सहभागिता नई संकल्पना नहीं है, भारत में सदियों से विद्यालय और समुदाय का घनिष्ठ संबंध रहा है। भारत में आश्रम, गुरूकुल तथा मदरसे जैसे शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था स्थानीय समुदाय के द्वारा होती थी। विद्यालय और समुदाय एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। उस समय 'गुरू' का पूरे समुदाय में मान सम्मान होता था, वह एक तरह से समुदाय का आदर्श होता था। 20वीं सदी पूर्व ज्यादातर औपचारिक शिक्षा निजी लोगों या धार्मिक निकायों द्वारा दी जाती थी। भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन से विद्यालय समुदाय से हटकर राज्याश्रित हो गये। सरकार ने 19वीं सदी में शिक्षा का उत्तरदायित्व लिया जो कि 20वीं सदी के मध्य में उच्च स्तर पर था। शिक्षा सरकार का उत्तरदायित्व होने से विद्यालय और समुदाय के बीच फासला बढ़ने लगा और समुदाय विद्यालयों को एक सरकारी विभाग जैसा समझने लगा। प्रस्तुत आलेख शिक्षा व्यवस्था की पड़ताल की गई है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी ग्राम स्वराज्य के बुनियादी सिद्धांत–मानव का सर्वोच्च स्थान, पूरा काम, शरीर श्रम, समानता, संरक्षकता, विकेन्द्रीकरण, स्वदेशी, स्वावलम्बन, सहयोग, सत्याग्रह, सब धर्मों की समानता, पंचायती राज और नई तालीम को मानते थे। गांधी जी चाहते थे कि गांव को अपने पांव पर खड़े होना चाहिए। अपनी जरूरतें खुद पूरी कर लेनी चाहिए। जहां तक संभव हो गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जाने चाहिए। इस तरह गांधी जी आत्म निर्भर गांव की कल्पना करते थे (ग्राम स्वराज्य महात्मा गांधी,

* प्रस्तुत शोध पत्र के लेखन में प्रोफेसर चांद किरण सलूजा, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा दिये गये सुझावों के लिए शोधकर्त्ता आभारी है।

** सहायक प्रोफेसर (शिक्षा), दूर शिक्षा निदेशालय, मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद

संग्राहक हरिप्रसाद व्यास पृ.-37) परंतु आज हमारे गांव वैश्वीकरण के युग में अपनी अधिकतर आवश्यकताओं के लिए पराश्रित होते चले जा रहे हैं। इसी तरह विनोबा भावे जी भी चाहते थे कि ग्राम पंचायतों को चाहिए कि वे ग्राम सेवक का रूप धारण करें और वे कभी शासन न बने।

जवाहर लाल नेहरू ने 2 अक्तूबर, 1959 को नागौर, राजस्थान में अपने भाषण में कहा था कि ''हमें आपसी सहयोग से काम करना चाहिए। हमें एकता और भाईचारे की भावना तथा अपने काम में और खुद में विश्वास के साथ आगे बढ़ना चाहिए। यह प्रश्न था कि यदि लोगों को जिम्मेदारी सौंप दी गई तो शायद वे इसे निबाह नहीं पायेंगे। लेकिन लोगों को मौका देने के बाद ही उन्हें जिम्मेदारी वहन करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। यह आवश्यक हो गया कि एक साहस भरा कदम उठाया जाए जिससे ज्यादा से ज्यादा जिम्मेदारी लोगों को सौंपी जा सके। लोगों की केवल राय नहीं लेनी बल्कि कारगर ताकत सौंपनी है'' (कुरूक्षेत्र, फरवरी, 1989) इस तरह नेहरू जी भी गांवों के विकास में सामुदायिक सहभागिता को महत्वपूर्ण मानते थे। महात्मा गांधी जी का तो स्पष्ट मत था कि ''सच्चे लोकतंत्र को केंद्र में बैठे बीस व्यक्ति नहीं चला सकते। इसे प्रत्येक गांव में निचले स्तर से लोगों द्वारा चलाया जा सकता है''। इस तरह से भारतीय ग्रामीण विकास में सामुदायिक सहभागिता का दर्शन जोर पकड़ रहा था।

ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता की आवश्यकता एवं औचित्य

भारतीय समाज का मूल चरित्र वस्तुतः ग्रामीण है। गाँवों की प्रगति और विकास पर ही भारत का भविष्य निर्भर है। आज ग्रामीण लोगों के सामने स्वास्थ्य, पोषण, पेयजल, स्वच्छता, शिक्षा, साक्षरता, रोजगार और महिलाओं की जागृति तथा विकास से जुड़ी मुख्य समस्यायें हैं। शिक्षा विकास का अपरिहार्य अंग है, यह विकास के लिए नींव का पत्थर है। शिक्षा को ग्रामीण विकास से पृथक नहीं किया जा सकता है। इस तरह शिक्षा और ग्रामीण विकास का अटूट संबंध है।

ग्रामीण क्षेत्रों का विकास करना और ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाना देश की आर्थिक योजना और विकास प्रक्रिया में मुख्य चिंता के विषय रहे हैं इस बात को अब और अधिक स्वीकार किया जा रहा है कि राष्ट्र द्वारा विविध क्षेत्रों में किया गया आर्थिक विकास और सराहनीय प्रगति तब तक सार्थक नहीं होगी जब तक कि उससे

ग्रामीण भारत में निवास करने वाले बड़े समुदाय को बेहतर एवं सम्मान जनक जीवन न मिल जाए (वार्षिक रिर्पोट 2005–2006 ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार)।

आज गांवों की आर्थिक प्रगति के साथ–साथ हमें उनकी सामाजिक प्रगति पर भी ध्यान देना होगा। ग्रामीण विकास को समग्र विकास की संकल्पना लेकर चलना पड़ेगा क्योंकि शैक्षिक विकास के साथ–साथ कृषि विकास, उद्योग विकास, सड़कें, संचार, बिजली, जलापूर्ति, वयस्क साक्षरता का विस्तार, परिवार नियोजन भी जरूरी विकास के पहलू हैं। ग्रामीण विकास संपूर्ण जिंदगी की गुणवत्ता की संवृद्धि है जो ग्रामीण क्षेत्र में न्यूनतम स्तर पर हर क्षेत्र के लोगों को उपलब्ध होनी चाहिए। लेकिन आज ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का जीवन की प्राथमिक और अनिवार्य आवश्यकताओं से सीधा संबंध नजर नहीं आता है।

भूमण्डलीकरण व समाज के हर क्षेत्र में बाजार के संबंधों के फैलाव का शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ है। एक तरफ तो शिक्षा के बढ़ते व्यावसायिकरण को देख रहे हैं दूसरी तरफ शिक्षा के लिए अपर्याप्त कोष (धन) व वैकल्पिक स्कूलों को सरकारी बढ़ावा इस ओर संकेत करते है कि शिक्षा का उत्तरदायित्व अब सरकार से हट कर, समुदायों व परिवारों पर आ रहा है। (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005)

भारत में पहले समुदाय के सहयोग से धर्मशालाओं, रास्तों का निर्माण, तालाब, स्कूल तथा प्याऊ का निर्माण और बाढ़ व अकाल में सहायता मिलती थी। आज लोगों की सोच यह हो गई कि सभी कार्य सरकार करेगी क्योंकि यह उसकी बाध्यता तथा कर्त्तव्य है। इसी वजह से आम आदमी का प्रशासन तथा इसकी संस्थाओं से अलगाव होता जा रहा है। अब गांवों से आत्मनिर्भरता का भाव खत्म होता जा रहा है। बहुत से छोटे–छोटे कार्य जिन्हें गांववासी अपने स्तर पर कर सकते हैं, पड़े रहते हैं। आज लोगों की सरकार पर निर्भरता ज्यादा बढ़ गई है और सामुदायिक भावना की कमी हो रही है। यही कारण है कि आज उनमें विकास कार्यों के प्रति जिम्मेदारी का भाव भी कम होता जा रहा है। अभी यह धारणा क्षीण है कि विद्यालय हमारा अपना है। विद्यालय को भी सरकारी दफ्तर की तरह समझा जाने लगा है। शिक्षा व्यवस्था के प्रबंध को सरकारी काम माना जाता है।

पंचायतों के 15वीं वर्षगांठ के चार्टर में कहा गया है कि भूमंडलीकरण से चुनौती व अवसर दोनों पैदा हुए हैं। इसलिए उच्च सरकारों को कार्यक्रम बनाने व कार्यान्वयन

के समय स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए। इसी तरह आज ग्रामीण शिक्षा व्यवस्था में सामुदायिक सहभागिता के सामने कठिन प्रश्न खड़े हैं जिनका हल ढूंढ़ना जरूरी है।

अमर्त्य सेन, ज्यां द्रेज (2000) का मानना है कि ग्रामीण स्कूलों के अध्यापकों के अनुपस्थित रहने कि समस्या का समाधान सबसे निकटस्थ संस्था अर्थात स्थानीय जन समुदाय के सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता। इसलिए ग्रामीण शिक्षक को स्थानीय स्वशासन के प्रति जवाबदेह बनाना जरूरी है। डकार फ्रेमवर्क फार एक्शन (2000) में भी कहा गया है कि सभी के लिए शिक्षा मानवीय अधिकार है। 21वीं सदी में स्थायी विकास और शांति पाने के लिए शैक्षिक विकास को रूप देना, लागू करना और पर्यवेक्षण करने की नीति बनाने में समाज की सहभागिता और जुटाव जरूरी है। एक उत्तरदायित्व जिम्मेदारी भरा सहभागिता युक्त शैक्षिक शासन और प्रबंध बनाना जरूरी है। स्पष्टत: बुनियादी शिक्षा के उद्देश्यों के संदर्भ में डकार फ्रेमवर्क में रणनीतिक कार्यों के अंतर्गत सहभागिता की प्रमुखता से बात की गई है। राममूर्ति समिति (1990) के मत में शिक्षा संबंधी योजनाओं के निर्माण में स्वैच्छिक एजेंसियों, समुदाय वर्गों व आम जनता में से किसी का भी हाथ नहीं है। पिछले कुछ दशकों के दौरान पहल तथा निर्णय निर्धारण की शक्तियां अधिकाधिक रूप से कम से कम हाथों में केंद्रीकृत हो गई हैं।

पंचायतीराज का विकास और सामुदायिक सहभागिता

स्वतंत्र भारत में अक्तूबर 1952 से सामुदायिक विकास कार्यक्रम शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाना तथा गरीबी दूर कर विकास के अवसर सभी को प्रदान कर ग्रामवासियों का जीवन स्तर सुधारना था। दुर्भाग्यवश यह उत्तम कार्यक्रम अंतत इसलिए असफल रहा क्योंकि इसमें उन लोगों की सहभागिता नहीं हो सकी जिसके लिए इसे बनाया गया था (योजना, जून, 2002)। 1957 में बलवंत राय मेहता समिति ने सामुदायिक विकास एवं राष्ट्रीय योजना का अध्ययन करते समय यही अनुभव किया कि जनता एक सिरे पर थी और सहकारी तंत्र दूसरे पर, जिसका दायित्व योजनाओं के क्रियान्वयन का था। सामुदायिक विकास तभी सफल हो सकता है जब समुदाय स्वयं अपनी समस्याओं का एहसास करे, अपने उत्तरदायित्वों की ओर सचेतन हो तथा उनके पास यथासंभव स्थानीय प्रशासन पर नियंत्रण रखने की समुचित वैधनिक शक्ति प्राप्त हो (शेठ, शमता 2000)। बलवंतराय

मेहता समिति सभी विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं की क्रियान्विति स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से चाहती थी। समिति ने सामाजिक शिक्षा, स्थानीय पंचायती राज के कार्य में शामिल किया था। पंचायती राज की त्रिस्तरीय संरचना से सामुदायिक सहभागिता हर स्तर पर देने की कोशिश समिति ने की थी। अशोक मेहता समिति (1977) ने भी सामुदायिक सहभागिता के महत्व को देखते हुए कहा कि पंचायती राज व्यवस्था में ग्राम सभा की महती भूमिका होनी चाहिए। हनुमंतराव समिति (1983) ने भी पुरजोर शब्दों में कहा कि स्थानीय स्तर पर योजना की दृष्टि से जनभागीदारी अति महत्वपूर्ण ही नहीं अपितु इसे अभिन्न अंग के रूप में देखा जाना चाहिए। पंचायती राज इसमें बहुत सहायक रहेगा। गरीबी उन्मूलन, बेरोजगारी एवं क्षेत्रीय असंतुलन को जनभागीदारी की महत्ता से समाप्त किया जा सकता है। जी.वी.के राव समिति (1985) में भी जिला स्तर की योजना बनाने में जन सामान्य की भागीदारी पर जोर दिया। इससे स्थानीय संस्थाओं की स्वायत्तता, प्रशासनिक दक्षता तथा योजना के सूक्ष्म पहलुओं को समझने की क्षमता में वृद्धि होगी।

इन विभिन्न समितियों की सिफारिशों के फलस्वरूप ही भारतीय संविधान में 73वां संशोधन किया गया। 73वें संशोधन ने स्वतंत्र भारत में पंचायती राज व्यवस्था को वैधनिक स्तर प्रदान किया। इस अधिनियम के द्वारा संविधान के भाग 9 में 16 अनुच्छेदों व 11वीं अनुसूची को शामिल किया गया। संविधान में सम्मिलित 11वीं अनुसूची में सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हेतु 29 विषयों को सूचीबद्ध किया गया है जिन पर पंचायतीराज संस्थाओं को कार्य करना है। ये 29 विषय पूरी तरह से सामुदायिक सहभागिता पर आधारित हैं। एक तरह से ग्रामीण निकाय से सामुदायिक सहभागिता को वैधानिकता प्रदान की गई है। 29 विषयों में शिक्षा, जिसके अतंर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं। इनमें तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा व पुस्तकालय शामिल हैं जो कि शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता के लिए द्वार खोलते हैं। 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप विभिन्न राज्यों ने अपने पंचायती राज अधिनियम बनाए हैं। 73वां संविधान संशोधन ग्रामीण विकास में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने के लिए जमीनी निशान है।

संविधान का 73वां संशोधन स्थानीय समुदायों को अपने बच्चों के लिए शिक्षा में निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए एक वैधानिक संस्थागत अवसर मुहैया

करवाता है,जो एक महत्वपूर्ण बदलाव है (राष्ट्रीय पाठयचर्या की रूपरेखा 2005 NCERT)। कहा जा सकता है कि 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से यह निर्विवाद रूप से मान लिया गया है कि गांवों में जन सहभागिता पंचायतों के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है। इस तरह अब सभी तरह के ग्रामीण विकास कार्यक्रम पंचायत द्वारा निर्धारित, संचालित और कार्यान्वित किये जायेंगे।

भारतीय शैक्षिक नीतियों के संदर्भ में ग्रामीण शिक्षा और सामुदायिक सहभागिता

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग(1949) ने गांवों के महत्व को समझते हुए ग्रामीण विश्वविद्यालय की सिफारिश की थी। आयोग के मत में भारत के विकास की योजना के लिए गांवों के पुनर्निर्माण का कार्यक्रम बनाना अति आवश्यक है। **कोठारी आयोग (1946-66)** के अनुसार यह अनिवार्य है कि स्कूल और स्थानीय जन समुदाय शिक्षा के कार्य में घनिष्ठता के साथ-साथ रहें। इससे शिक्षा के विकास के लिए स्थानीय ज्ञान, रूचि और उत्साह का उपयोग हो सकेगा। राष्ट्रीय नीति के रूप में स्थानीय जन समुदाय को अर्थात देहाती क्षेत्रों में ग्राम पंचायतों को और शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं को उनके स्थानीय स्कूलों के साथ सहयोजित किए जाए। स्कूलों के दैनंदिन प्रशासन का स्थानीय जनता के साथ-साथ यथा संभव घनिष्ठ सपंर्क होना चाहिए। कोठारी कमीशन का पुख्ता अभिमत है कि यह भी स्मरण रखना होगा कि शिक्षा का प्रबंध प्रत्येक माता-पिता और परिवार से है और उसे जन साधारण के अधिक से अधिक निकट संपर्क में रखना चाहिए। शिक्षा का सर्वोत्तम प्रशासन स्थानीय जन समुदाय के द्वारा अथवा उससे घनिष्ठ सहयोग से ही संचालित हो सकता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता के स्पष्ट निर्देश है कि शिक्षा की आयोजना और प्रबंध का दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य को देश की विकासात्मक और जन शक्ति विषयक आवश्यकताओं से जोड़ना है। लोक-भागीदारी को प्रधानता देना, जिसमें गैर-सरकारी एजेंसियों का जुड़ाव तथा स्वैच्छिक प्रयास शामिल है और प्रदत्त उद्देश्यों और मानदण्डों के संबंध में जवाबदेही के सिद्धांत की स्थापना करना। उपयुक्त निकायों के माध्यम से स्थानीय लोग विद्यालय सुधार कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण रोल अदा करेंगे। गैर सरकारी स्वैच्छिक प्रयासों को, जिनमें समाज सेवी सक्रिय समुदाय भी शामिल है, प्रोत्साहन दिया जाएगा और वित्तीय सहायता भी उपलब्ध करवाई जाएगी बशर्ते कि उनकी प्रबंध व्यवस्था ठीक हो। ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड

कार्य में शासन स्थानीय निकाय, स्वयं सेवी संस्थाओं और व्यक्तियों की पूरी भागीदारी होगी। अनौपचारिक शिक्षा केंद्रों में अनुदेशक के तौर पर काम करने के लिए स्थानीय समुदाय के प्रतिभावान और निष्ठावान युवक और युवतियों को चुना जाएगा। ग्रामीण विश्वविद्यालय के नए ढांचे को सुदृढ़ किया जाएगा और इसे महात्मा गांधी के क्रांतिकारी विचारों के अनुरूप विकसित किया जाएगा। 1986 की शिक्षा नीति इस ओर भी ध्यान देती है कि जिस हद तक संभव होगा, इन विभिन्न तरीकों से साधन जुटाए जाएंगे और चंदा इकट्ठा करना, इमारतों का रख-रखाव तथा रोज-मर्रा काम में आने वाली वस्तुओं की पूर्ति में स्थानीय लोगों की मदद ली जाएगी। ये सभी उपाय न केवल राज्य संसाधनों पर बोझ को कम करने के लिए किए जाएंगे, अपितु शैक्षिक प्रणाली में जनता के प्रति जवाबदेही की व्यापक भावना को पैदा करने के लिए कारगर होंगे।

राममूर्ति समिति (1990) ने तो पुरजोर शब्दों में ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता की वकालत की है। समिति के अनुसार यदि शिक्षा को राष्ट्रीय एकता के प्रति कोई महत्वपूर्ण योगदान करना है तो इसके साथ-साथ गांव और मोहल्ला स्तरों पर स्थानीय समुदायों को सुदृढ़ बनाने वाले कार्यक्रमों को भी संचालित किया जाना चाहिए। केवल शिक्षा में ही नहीं बल्कि विकास तथा लोकतंत्र में भी एक पवित्र एवं सहभागी दृष्टिकोण का विकास किया जाना आवश्यक है। शिक्षा, लोकतंत्र तथा विकास के समन्वित कार्यक्रम के लिए गांव को एक इकाई माना जाना चाहिए। गांव के प्रतिनिधि के रूप में ग्राम सभा से यह अनुरोध किया जा सकता है कि गांव के लिए शिक्षा समेत विकास की योजना तैयार करे और अपनी प्राथमिकताएं दे। समिति ने सिफारिश की है कि आंगनवाड़ियों और अन्य ई.सी.सी.ई. केंद्रों का प्रबंध पंचायती राज के माध्यम से पूरी तरह स्थानीय सामुदायिक समूहों को सौंप देना चाहिए। इससे समुदाय के प्रति सार्वजनिक जवाबदेही भी होगी। स्कूल और समुदाय के बीच के संबंध की प्रारंभिक शिक्षा के सर्वीकरण में मूलभूत भूमिका है। शिक्षा संकुलों को चलाने का दायित्व संयुक्त रूप से स्थानीय समुदाय और शिक्षकों का होगा यदि जब तक समुदाय विद्यालय की सहायता के लिए आगे नहीं आता और साथ ही विद्यालय भी समुदाय की कुछ आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति जिम्मेदार नहीं बनता है तो शिक्षा में खासकर प्रारंभिक चरण में कोई उल्लेखनीय उपलब्धि संभव नहीं है। राममूर्ति समिति का महत्वपूर्ण सुझाव है कि सामुदायिक भागीदारी के लिए सुविचारित समुदाय से संबंध तथा स्थानीय रूप से

प्रासंगिक पाठ्यचर्या भी आवश्यक हैं अन्यथा शिक्षा के लाभ समाज के लिए महत्वहीन हो जाएंगे।

प्रोग्राम ऑफ एक्शन (1992) ने ग्रामीण सामुदायिक सहभागिता के लिए ग्रामीण शिक्षा समिति की सिफारिश की थी। प्रोग्राम ऑफ एक्शन की अनुशंसाओं के तहत **शिक्षा के विकेंद्रित प्रबंध** पर वीरप्पा मोइली की अध्यक्षता में केब कमेटी 2 फरवरी 1993 को बनाई गई। कमेटी ने शिक्षा के प्रबंध के संदर्भ में पंचायती राज संस्थाओं के जिला स्तर, ब्लाकॅ स्तर और गांवों के स्तर पर व्यापक रूप से योजना बनाकर निर्देश सिद्धांत बनाये। संविधान संशोधनों के चित्त को ध्यान में रखते हुए लोगों की सहभागिता बढ़ानी चाहिए। पंचायतों, पंचायत समितियों, जिला परिषदों को शिक्षा प्रबंध संबंधी उत्तरदायित्व का प्रत्यायोजन करना चाहिए। शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए **ग्रामीण शिक्षा समिति** एक आदर्श संगठन है। कमेटी ने ग्रामीण शिक्षा समिति, पंचायत की स्थायी शिक्षा समिति, पंचायत समिति की स्थायी शिक्षा समिति इसी तरह जिला परिषद की शिक्षा की स्थायी समिति के कार्यों का व्यापक स्तर पर वर्णन किया है।

ग्रामीण शिक्षा समिति ग्रामीण समुदाय के सहयोग को शिक्षा के लिए बढ़ायेगी। समिति शिशु देखभाल एवं शिक्षा, औपचारिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का अपने क्षेत्राधिकार में पर्यवेक्षण करेगी। ग्रामीण शिक्षा समिति शैक्षिक संस्थाओं और केंद्रों का दौरा करके उपस्थिति की व अन्य रजिस्टर की जांच कर सकती है। अभिभावकों को बच्चों को स्कूल में दाखिले के लिए प्रोत्साहित करेंगी। विद्यालय में अपव्यय को रोकना भी अहम होगा। पीने का पानी, शौचालय, खेल का मैदान भी उपलब्ध करायेगी। स्कूलों के बजट की सिफारिश करेगी। विद्यालयों में अध्यापकों व विद्यार्थियों की अनुपस्थिति की रिर्पोट भी देगी। जिला परिषद के निर्देश में विद्यालय का वार्षिक केलैण्डर तैयार करेगी। इस तरह ग्रामीण समुदाय के लिए शिक्षा में सहभागिता का ग्रामीण शिक्षा समिति अहम माध्यम है। इस तरह पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता की व्यवस्था उभरने लगी थी। केब कमेटी ने इसे व्यवस्थित निर्देश दिये।

शिक्षा के अधिकार बिल (2005) का अध्ययन भी दर्शाता है कि मुफ्त और आवश्यक शिक्षा देने में स्थानयीय सत्ता प्राधिकारों की महत्वपूर्ण भूमिका है। बिल के

स्पष्ट दिशानिर्देश है कि स्थानीय सरकारों के सहयोग के बिना सभी बच्चों तक शिक्षा नहीं पहुंच सकती है। इस बिल के कार्यान्वयन के लिए स्थानीय सत्ता प्राधिकरण को वित्तीय सहायता देना जरूरी है जिसे समय-समय पर निर्धारित करते रहना चाहिए। स्थानीय संस्थाएं सुनिश्चित करे कि उसके क्षेत्र का 6-14 वर्ष तक के सभी बच्चे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करें। मुफ्त और आवश्यक प्राथमिक शिक्षा के लिए योजना, बजट, अतिरिक्त विद्यालय, अध्यापक व अन्य सुविधाओं की जरूरत के अनुसार सुनिश्चित करें। अपने क्षेत्र में अवसंरचनात्मक संसाधन, अध्यापक और सहायक सुविधाओं के अनुवीक्षण का प्रावधान किया जाना चाहिए। इस तरह शिक्षा का अधिकार बिल भी शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता के महत्व को समझता है।

प्रशासनिक सुधार आयोग (2005) के अनुसार सर्व शिक्षा अभियान को पंचायती राज संस्थाओं में सामुदायिक स्वामित्व वाली भावना पैदा करके मिशन को आगे बढ़ाना है। इसमें ग्रामीण शिक्षा समिति की भागीदारी प्रमुख है।

राष्ट्रीय पाठ्चर्या की रूपरेखा (2005) के सुझावों पर इस संदर्भ में ध्यान देना जरूरी है क्योंकि इसमें व्यापक और विस्तृत रूप से समुदाय और शिक्षा के संबंधों पर जोर दिया गया है।

- शिक्षा शास्त्रीय अभ्यास जो सहभागिता को बढ़ावा देने के विषय में सजग हो और पाठ्यचर्या से जुड़े निर्णयों के बारे में समुदाय से बातचीत करने को लेकर खुलापन होना चाहिए।
- समुदायों के पास किसी अनुभव या ज्ञान को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाने या न बनाने को लेकर प्रश्न हो सकते हैं। इसलिए स्कूलों को समुदायों के साथ एक रिश्ता बनाने के लिए तैयार रहना चाहिए। स्थानीयता के साथ जुड़ाव में ज्ञान को संदर्भों में रखा जाए ताकि उसकी प्रासंगिकता और अर्थपूर्णता महसूस की जा सके।
- प्रजातांत्रिक भागीदारी कमजोर और समाज के हाशिए पर रहने वाले लोगों के सशक्तिकरण का भी जरिया है।
- स्कूल, समुदाय को अपने परिसर में बुला कर बाहरी संसार को पाठ्यचर्या की प्रक्रियाओं को प्रभावित करने में एक भूमिका दे सकता है। अभिभावक और समुदाय के सदस्य स्कूल में संदर्भ व्यक्ति के रूप में आकर पढ़ाए जा रहे विषय से संबंधित अपना ज्ञान बांट सकते हैं।

- बच्चों की शिक्षा और अधिगम के संसार में समुदाय की भागीदारी इसलिए होनी चाहिए ताकि समुदाय मौखिक इतिहास (बीजारोपण और फसल कटाई, मानसून, परंपरागत शिल्पों से जुड़ी कला इत्यादि) का प्रसार बच्चों में कर पाए। साथ ही जहां आवश्यक हो वहां स्कूल आलोचनात्मक प्रक्रिया के लिए प्रोत्साहित करें।
- गांव में बच्चों के शिक्षण के अनुकूल परिवेश विकसित करे एवं **स्कूल के रूप में गांव** की अवधारणा को चरितार्थ करें।
- स्कूल एवं उसकी सुविधाओं के रख-रखाव के लिए भी समुदाय से मदद ली जा सकती है। स्थानीय मदद से स्कूल की चारदीवारी बनवाई जा सकती है।
- स्थानीय कार्यों के लिए स्कूल भवन का इस्तेमाल किया जा सकता है, बदले में परिसर के रख-रखाव की कुछ सामुदायिक जिम्मेदारी भी तय की जा सकती है।
- बच्चे सीधे ग्राम पंचायत के सदस्यों से संपर्क-संवाद कर सकते हैं, उनको स्कूल में बुलाया जाए और वे विस्तार से बताएं कि विकेन्द्रीकरण ने स्थानीय नागरिक मुददों को संबोधित करने में कैसे मदद की है।
- योजना गतिविधि की महत्वपूर्ण प्रक्रिया में स्कूल वृहत्तर समुदाय को बच्चों की शिक्षा से जोड़ सकता है। इसमें ग्राम शिक्षा समिति तथा अन्य वैधानिक संस्थाएं शामिल हैं।
- यह सुझाव महत्वपूर्ण दिया गया है कि सामुदायिक भागीदारी का तात्पर्य यह नहीं होना चाहिए कि गरीब परिवारों पर उसका बोझ पड़े।

शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता के मुख्य क्षेत्र

मार्क ब्रे (1999) के अनुसार शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता नीति प्रारूप निर्माण, संसाधनों की गतिशीलता, पाठ्यचर्या विकास, अध्यापकों की नियुक्ति व पदावनति, पर्यवेक्षण, वेतन का भुगतान, अध्यापक प्रशिक्षण, पाठ्यपुस्तकें तैयार करना, पाठ्यपुस्तकों का वितरण, प्रमाणीकरण, निर्माण और मरम्मत इत्यादि विषयों में सामुदायिक सहभागिता का महत्व है। इस तरह मार्क ब्रे शिक्षा के सभी पहलुओं में सामुदायिक सहभागिता को स्वीकारा है साथ ही ध्यान दिलाया है कि सहभागिता विश्वसनीय हो, यह दोनों तरफ से हो सरकार समुदाय पर और समुदाय सरकार पर विश्वास करे।

- भारत में साधारणतया पाठ्यक्रम का निर्णय राज्य स्तर पर किया जाता है। भारत बहुसांस्कृतिक देश है इसलिए पाठ्यक्रम और अनुदेश के निर्माण में स्थानीय सहभागिता जरूरी है। इसमें स्थानीय संस्थाओं को अच्छा माध्यम बनाया जा सकता है। स्थानीय के साथ जुड़ाव को ज्ञान के संदर्भों में रखा जाए ताकि उसकी प्रासंगिकता और अर्थपूर्णता महसूस की जा सके। पाठ्यक्रम में भौगोलिक, क्षेत्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक विभिन्नताओं और जरूरतों के लिहाज से भी सामुदायिक सहभागिता का दावा मजबूत दिखता है।
- नीति निर्माताओं को स्थानीय समुदाय की आवश्यकताओं के अनुसार स्कूल में दाखिले की आयु निश्चित करने का अधिकार देना चाहिए। विद्यार्थी के क्षमण और अनुशासन के लिए भी स्थानीय समुदाय को अधिकार देना चाहिए। स्कूलों का समय और छुट्टी कार्यक्रम में भी समुदाय का दृष्टिकोण होना चाहिए।
- विद्यालय भवन की जगह का चयन पूरी तरह से समुदाय के परामर्श पर निर्भर रहना चाहिए। भौगोलिक व क्षेत्रीय जरूरतों व विशेषताओं को समुदाय अच्छी तरह समझ सकता है। बच्चे कहां पर आसानी से सुरूचिपूर्ण वातावरण में शिक्षा प्राप्त करेंगे यह निर्णय समुदाय अच्छी तरह कर सकता है।
- विद्यालय की अन्य सुविधाएं पीने का पानी, शौचालय, खेल का मैदान, हरे-भरे पेड़ पौधे, अच्छा रास्ता, विद्यालय की भौतिक सुविधाएं इत्यादि में भी सामुदायिक सहभागिता जरूरी है।
- अधिगम के मूल्यांकन के लिए भी समुदाय की मदद ली जा सकती है। विद्यार्थी क्या सीखता है? घर, परिवार, समुदाय, मित्रमण्डली में उसका व्यवहार किस तरह का है? विद्यार्थी ज्ञान का समाज में कैसे अनुकूलन करता है इत्यादि संदर्भों को समुदाय के द्वारा जांचा जा सकता है। मूल्यांकन स्थानीय संस्थाओं के द्वारा भी निर्देशित किया जा सकता है।
- शैक्षिक सुधारों के लिए निधि बुनियादी जरूरत है। विकेन्द्रीकरण के किसी भी पहलू का कोई भी प्रयास बगैर सही तरह के निधिकारक के नहीं हो सकता है। समुदाय गरीब परिवार के बच्चों की फीस देने में या माफी में सहायता कर सकता है। समुदाय के द्वारा विद्यालय भवन का निर्माण भी कराया जा सकता है।

- भारत में शैक्षिक पर्यवेक्षण पूरी तरह से सरकारी जिम्मेदारी है। समुदाय को शिक्षा की जिम्मेदारी पर्यवेक्षण द्वारा बहुत ज्यादा महसूस होगी। विद्यालय को समुदाय सबसे नजदीक से देखते हैं इसलिए स्कूल की बहुत सारी समस्याओं का हल समुदाय स्वयं कर सकता है। विद्यालय की सुविधाओं, अध्यापकों व विद्यार्थियों की उपस्थिति, विद्यालय का दैनंदिन प्रशासन, शैक्षिक कार्यक्रम योजनाएं जैसे मध्याह्न भोजन योजना इत्यादि में समुदाय पर्यवेक्षण कर सकता है। शैक्षिक योजनाओं का सामाजिक अंकेक्षण भी किया जा सकता है।
- अध्यापक विकास में भी सामुदायिक सहभागिता जरूरी है। स्थानीय संस्था के द्वारा अध्यापकों को संरक्षण दिया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में अध्यापकों के आवास व अन्य सुविधाओं का समुदाय के द्वारा प्रबंध किया जा सकता है। शिक्षण में भी समुदाय अपने अनुभव व ज्ञान से अध्यापकों की सहायता कर सकता है।
- पंचायतों द्वारा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में समुदाय मदद कर सकता है। मध्याह्न भोजन, सर्व शिक्षा अभियान, विकलांग विद्यार्थियों की शिक्षा, अनुसूचित जाति व जनजाति और पिछड़े वर्ग के बच्चों की शिक्षा, महिला और बाल विकास कल्याणकारी कार्यक्रमों में समुदाय पंचायती राज संस्थाओं की मदद कर सकते हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित कुटीर उद्योग, खेती, मिट्टी के बर्तन, तांबे के बर्तन, लकड़ी के खिलौने आदि बनाने का प्रशिक्षण समुदाय विद्यालय को दे सकता है।
- स्कूल में सांस्कृतिक कार्यक्रमों, त्यौहार, राष्ट्रीय उत्सव, खेल-कूद, मनोरंजन, मेले, नौटंकी, प्रर्दशनी, मण्डली, लोकगीत, नृत्य इत्यादि में समुदाय बड़े स्तर पर विद्यालय की मदद कर सकता है। क्योंकि उन्हें स्थानीय कलाकारों का सहयोग तथा जनसहभागिता प्राप्त होती है।
- स्कूल प्रबंध समिति के अध्यापक, अभिभावक, उच्च अधिकारियों की मौजूदगी से समुदाय का विद्यालय प्रबंध में भी सहयोग लिया जा सकता है।
- विद्यालय में अनुशासन की समस्या से समुदाय के सहयोग से बखूबी निपटा जा

सकता है। अनुशासन के कारणों व समाधान को समुदाय में जरूर चर्चित किया जाना चाहिए। विद्यालय के हर बच्चे की सामाजिक, आर्थिक पारिवारिक स्थिति से समुदाय अच्छी तरह अवगत करा सकता है।

- शैक्षिक नीतियों के निर्माण में समुदाय की सहभागिता जरूरी है क्योंकि समुदाय को स्थानीय समस्याओं व समाधानों की जानकारी होती है। शैक्षिक योजना के कार्यान्वयन में विभिन्न गतिविधियों, प्रबंधन एवं योजना के लाभों की उपलब्धता में जन सहयोग लिया जा सकता है। व्यक्तियों में योजनाओं के सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक और अन्य सुविधा के लाभों का समान बंटवारे में भी जनसहयोग जरूरी है। शैक्षिक योजनाओं व गतिविधियों का समुदाय की सहभागिता से मूल्यांकन होना भी जरूरी है। स्थानीय तकनीकी जानकारी व स्थानीय संसाधनों का उपयोग भी अच्छी तरह शैक्षिक योजनाओं में किया जा सकता है स्थानीय शैक्षिक आवश्यकताओं की जानकारी समुदाय के पास ही होती है। इस कारण शैक्षिक योजना बनाते समय पूर्ण रूप से पारदर्शिता तभी रखी जा सकती है जब योजना के निरूपण, क्रियान्वयन एवं प्रबन्धन में समुदाय का जुड़ाव हो ।
- आज ग्रामीण शिक्षा में पंचायती राज संस्थाओं के द्वारा समुदाय की भागीदारी शिक्षा में सुनिश्चित की गई है। ग्रामीण शिक्षा समिति, पंचायत समिति की स्थायी शिक्षा समिति, जिला परिषद की स्थायी शिक्षा समिति में समुदाय के प्रतिनिधियों द्वारा शिक्षा विषयों पर विचार-विमर्श होता है। ग्रामीण शिक्षा समिति के द्वारा तो प्राथमिक शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता सीधे तौर पर होती है।
- एशिया में लंबे समय से पारंपरिक रूप से समुदाय द्वारा स्कूल चलाये जा रहे हैं। सामन्यतया सरकार और समुदाय द्वारा सहभागिता का सूत्र अमल में लाया जाता है जिसमें समुदाय स्कूल पूंजी, भूमि, भवन, फर्नीचर की जिम्मेदारी लेता है। और अध्यापक सरकार द्वारा उपलब्ध कराये जाते हैं। कुछ सामुदायिक स्कूल अभिभावक और समुदाय के वित्त दान के द्वारा चलाये जाते हैं, इस परंपरा को भी बढ़ावा दिया जा सकता है।

इस पूरे संदर्भ में भारत में शैक्षिक कार्यक्रमों पर एक नजर डालनी जरूरी है। सामुदायिक सहभागिता जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य रहा है। इस कार्यक्रम में विकेंद्रित प्रबंध पर जोर था। **डी.पी.ई.पी.** में सफलतापूर्वक ग्रामीण शिक्षा समिति का गठन किया गया था जो कि स्कूल गतिविधियों में सहयोग सामुदायिक सहभागिता के द्वारा बढ़ाती है। कार्यक्रम ने शिक्षा में अभिभावक और स्थानीय समुदाय के महत्व को समझा। इस कार्यक्रम में स्कूल भवन निर्माण में वी.ई.सी को बहुत सफलता मिली है। **राष्ट्रीय साक्षरता मिशन** में भी लक्ष्य निर्धारित करने और नियत समय में उसे पूरा करने के साथ ही समाज के सभी वर्गों की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने पर बल दिया गया।

शिक्षा कर्मी परियोजना का भी उद्देश्य राजस्थान के दूरवर्ती, शुष्क और पिछड़े गांवों में उत्तम स्तर की प्राथमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना है। कार्यक्रम में कक्षा परिवर्तनों के लिए स्थानीय युवाओं को उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान करके शिक्षकों के अनुपस्थित रहने की समस्या का समाधान किया है। इस परियोजना में 2000 गांवों में ग्रामीण शिक्षा समिति बनाई गई जिसके द्वारा सामुदायिक सहभागिता और ग्राम स्तरीय योजनाओं को बढ़ावा दिया गया। ग्रामीण शिक्षा समिति, स्कूल भवन निर्माण, मरम्मत, समय-सारणी व केलैण्डर के बनाने में भी सहायता करती थी। लोक जुम्बिश परियोजना ने भी सामुदायिक सहयोग के माध्यम से सूक्ष्म-योजना तैयार करने और स्कूली खाका तैयार करने का एक साकारात्मक प्रभाव दर्शाया है। सामुदायिक सहभागिता इन दोनों प्रोजेक्टों की सफलता का मुख्य कारण रहा है।

मध्यप्रदेश की **शिक्षा गारंटी योजना** में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा की समस्या का हल स्थानीय समुदाय और स्थानीय सरकार व राज्य सरकार के बीच सहभागिता पर था। इस योजना में समुदाय द्वारा मांग व जरूरत पर 90 दिनों में स्कूल खोला जाता था। एक कि.मी. के अंदर शिक्षा उपलब्ध कराई जाती थी। इसमें स्थानीय सामाजिक पूंजी का उपयोग भी हुआ है। स्थानीय निवासी का गुरू के लिए पहचान कर समुदाय द्वारा सिफारिश की जाती थी। शिक्षा गांरटी योजना में समुदाय की सहभागिता के आधार पर समुदाय स्वामित्व की भावना पैदा की गई। इस योजना द्वारा समुदाय प्रतिभावान क्षमता का और सशक्तिकरण हुआ है।

जनशाला भारत सरकार तथा पांच यू एन एजेंसियों का एक संयुक्त कार्यक्रम है। इसका उद्देश्य यू ई ई की पूर्ति की दिशा में पहले से किए जा रहे प्रयासों को समर्थन देना है। कार्यक्रम के उद्देश्य में प्रमुख है–प्रभावी स्कूल प्रबंधन और बाल अधिकारों के संरक्षण में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाना और उसे बनाए रखना। यह एक ऐसा समुदाय आधारित कार्यक्रम है जिसमें सुविधावंचित समुदायों, सीमान्त समूहों, अनुसूचित जातियों/जनजातियों, अल्पसंख्यकों के बच्चों तथा कामकाजी बच्चों व विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

वर्तमान में ज्यादातर शैक्षिक योजनाओं को **सर्व शिक्षा अभियान** में अन्तर्निहित कर दिया गया है। सर्व शिक्षा अभियान एक ऐसा प्रयास है जिसमें प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण को स्कूल व्यवस्था में सामुदायिक स्वामित्व के द्वारा प्राप्त करना है। इस अभियान में उपयोगी और प्रासंगिक प्राथमिक शिक्षा 6से 10 वर्ष आयु के सभी बच्चों को 2010 तक उपलब्ध करायेगा और यह विद्यालयों के प्रबंध में सक्रिय सामुदायिक सहभागिता के द्वारा सामाजिक, धार्मिक और लैंगिक अंतरों को भरेगा। यह एक ऐसा प्रयास है जिसमें पंचायती राज संस्थाएं, स्कूल प्रबंध समितियां, ग्रामीण और शहरी स्लम स्तर की शिक्षा समितियां, अभिभावक–शिक्षक संघ, मां–अध्यापक संघ, जनजाति स्वायत्त कांऊसिल और अन्य जमीनी स्तर की संरचनाएं प्राथमिक शिक्षा के प्रबंध में शामिल हैं। इसमें शिक्षा व्यवस्था द्वारा बच्चे को समाज से पृथक या अलग नहीं किया जाता बल्कि सामुदायिक सुदृढ़ता से बढ़ावा दिया जाता है। यह कार्यक्रम समुदाय आधारित अनुवीक्षण की पारदर्शिता पर आधारित है। इस तरह सर्व शिक्षा अभियान का भविष्य अध्यापकों, अभिभावकों और पंचायती राज संस्थाओं के सहयोग पर आधारित है। यह समुदाय के उत्तरदायित्व और पारदर्शिता पर भी निर्भर करता है।

झारखंड शिक्षा परियोजना परिषद (JEPC) का गठन 12 अप्रैल 2001 को किया गया था। यह परिषद सर्व शिक्षा अभियान और अन्य शैक्षिक कार्यक्रमों का कार्यान्वयन करती है। सर्व शिक्षा अभियान के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ग्रामीण शिक्षा समिति के द्वारा स्वामित्व की भावना पैदा करती है। परिषद द्वारा ग्रामीण शिक्षा समिति का हर महीने का ब्यौरा व वार्षिक केलैण्डर भी प्रकाशित किया जाता है। इससे समुदाय को अनुवीक्षण करने का मौका मिलता है जो कि सामुदायिक सशक्तिकरण में भी सहायक है। वी.ई.सी. सदस्यों का कार्यशाला के द्वारा सर्व शिक्षा अभियान कार्यक्रम,

स्कूल प्रबंध के कौशल के सदंर्भ में प्रशिक्षण दिया जाता है जिसमें सामुदायिक नेतृत्व का सशक्तिकरण किया जाता है। पोस्ट कार्ड और रेडियो कार्यक्रम के द्वारा सामुदायिक जागरूकता शिक्षा के बारे में दी जाती है।

मध्य प्रदेश सरकार की युवा नीति (2008) के अनुसार विद्यार्थियों में कौशल वृद्धि के लिए स्थानीय सफल व्यापारियों/कारीगरों से सेवाएं ली जाएंगी। स्कूलों के पाठ्यक्रमों में सामुदायिक सहभागिता को महत्व दिया जाना चाहिए। प्रदेश के विभिन्न अंचलों और समुदायों की प्रचलित संस्कृति, रीति-रिवाज और ज्ञान को पल्लवित करने के लिए शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में उनका समावेश किया जाएगा। विभिन्न विभागों में समन्वय होना जरूरी है। गोकुल ग्राम समेकित विकास कार्य योजना बनाई है। गोकुल ग्रामों के सर्वांगीण विकास का काम किया जाएगा। गोकुल ग्राम में बीस विभाग हैं। स्थानीय निकायों को जन-भागीदारी के आधार पर युवा नीति लागू करने के लिए अनुदान दिया जाएगा। इस तरह भारत में केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा सामुदायिक सहभागिता को बढ़ाने का प्रयास समय-समय पर किया गया है।

शोधकर्त्ता द्वारा एम.फिल. शोधकार्य ''73वें संविधान संशोधन के परिप्रेक्ष्य में ग्राम पंचायतों के शैक्षिक उत्तरदायित्व का अध्ययन: मोहम्मद पुर माजरा गांव का व्यक्तिवृत अध्ययन'' में ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता के संदर्भ में मुख्य निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए।

मोहम्मदपुर माजरा गांव हरियाणा के झज्जर जिले का गांव है। झज्जर से पूर्व में 10 कि.मी. दूर है। गांव में तीन सरकारी स्कूलों में भवन निर्माण व पीने के पानी की सुविधा भी है। एक स्कूल के बच्चों के लिए खेल का मैदान ठीक करवाया गया है, एक स्कूल की चारदीवारी बनवाई गई है। तीनों स्कूलों में शौचालयों की सुविधा भी दी है।

ग्राम पंचायत ने अध्यापकों की कमी की शिकायत भी उच्च शिक्षा अधिकारियों से की है व ग्राम पंचायतों के प्रयासों से एक संस्कृत अध्यापिका की नियुक्ति भी स्कूल में की गई थी। ग्राम पंचायत के दो-तीन सदस्यों द्वारा ही विद्यालयों का निरीक्षण किया जाता है। ज्यादातर ग्राम पंचायत के सदस्यों को निरीक्षण संबंधी अपने अधिकार व दायित्व का पता ही नहीं है। कुछ अध्यापकों का यह मत भी है कि ग्राम पंचायत

केवल औपचारिकतापूर्वक निरीक्षण करती है। ग्राम पंचायत सदस्यों का कहना है कि शिक्षा-संबंधी ग्राम पंचायत के कार्य व उत्तरदायित्वों का लिखित रूप से कोई भी प्रारूप नहीं दिया है।

ग्राम पंचायत से विद्यालय भी अपेक्षा करता है कि वे विद्यालय की समस्याओं को सुलझाये। हरियाणा राज्य सरकार ने भी मध्याह्न भोजन की व्यवस्था, 6-14 वर्ष के बच्चों के दाखिला प्रक्रिया में सहयोग, विकलांग बच्चों को पढ़ने के लिए प्रेरित करने की अपेक्षा ग्राम-पंचायतों से की है।

मोहम्मदपुर माजरा गांव के तीनों विद्यालयों में ग्राम शिक्षा समिति व ग्राम निर्माण समिति बनाई गई है। इन समितियों के कुछ सदस्यों को अपनी सदस्यता की जानकारी भी नहीं है। इनका कार्य केवल निर्माण कार्यों व खर्चे के हिसाब तक ही सीमित है। समिति के सदस्यों को इन समितियों के उद्देश्यों व कार्यों की भी जानकारी नहीं है। शिक्षा से संबंधित किसी भी मुद्दे पर चर्चा नहीं होती जिससे समितियों के उद्देश्य ही विफल हो जाते हैं। मुख्य अध्यापक व अन्य अध्यापकों की सामान्यतया ग्राम सभा में ग्राम पंचायत की बैठक में नहीं बुलाया जाता है। ग्राम-पंचायत की बैठकों में विद्यालय संबंधी समस्याओं पर भी बहुत कम चर्चा होती है। इस तरह विद्यालय में ग्राम पंचायत के संबंध अच्छे नहीं हैं।

महिलाओं की ग्राम पंचायत के कार्यों में निष्क्रिय भूमिका है जिससे समुदाय का आधा हिस्सा कोई भी उत्तरदायित्व पूरा नहीं कर पाता है। गांव में पानी व बिजली की समस्या रहती है जिससे विद्यार्थियों की पढ़ाई प्रभावित होती है। अनुसूचित जाति के पंचों की सक्रिय भूमिका नजर नहीं आती है। ग्राम पंचायत में गुट-बाजी देखी जा सकती है। स्वर्ण जाति, अनुसूचित जाति, पिछड़े वर्ग के अपने-अपने गुट हैं जो कि सामुदायिक सहभागिता को प्रभावित करते हैं। ग्राम सभा ग्राम पंचायत का आधार है। ग्राम सभा में शिक्षा संबंधी विषयों पर चर्चा नहीं होती है। ग्राम सभा की बैठक में कम सदस्य ही भाग लेते हैं।

मोहम्मदपुर माजरा गांव के तीनों सरकारी स्कूलों में विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम है। गांव में ठाकुरद्वारा मंदिर कमेटी के माध्यम से मंदिर की ही भूमि पर एक प्राइवेट स्कूल चलाया जा रहा है जिसकी प्रगति हर दिन बढ़ रही है। यह कम फीस में ही गांव

वासियों को शिक्षा की सुविधा दे रहा है। इस स्कूल की प्रबंध समिति में गांव के सदस्य भी होते हैं। इस स्कूल में ज्यादातर गांव के ही शिक्षित युवक-युवतियां अध्यापक हैं। समुदाय की बहुत ही सक्रिय सहभागिता ''ठाकुरद्वारा विद्या मंदिर विद्यालय'' में देखी जा सकती है। गांववासी सरकारी स्कूलों की अपेक्षा इस प्राइवेट स्कूल की पढ़ाई पर ज्यादा विश्वास कर रहे हैं। गांव के किसान व मज़दूर भी जैसे-तैसे बच्चों की फीस का प्रबंध करके प्राइवेट स्कूलों में ही बच्चों को पढ़ाते हैं। सरकारी स्कूलों में केवल वे ही बच्चे पढ़ते हैं जिनके अभिभावक प्राइवेट स्कूलों में फीस देने में असमर्थ हैं। इससे पता चलता है कि यदि गांव के सरकारी स्कूलों में शिक्षण गुणवत्ता अच्छी हो तो अपने बच्चों को इन्हीं स्कूलों में पढ़ाएं। इस कारण वे प्राइवेट स्कूलों पर ज्यादा विश्वास कर रहे हैं।

यह भी देखा गया है कि गरीब एवं कमजोर वर्ग के परिवारों के बच्चे या तो स्कूल जाते नहीं अथवा स्कूल जल्दी छोड़ देते हैं। कुछ अभिभावकों की सोच है कि बच्चा घर में रहेगा तो छोटे बच्चों को संभालेगा जिससे वे अपने दैनिक खेत-खलिहान के कार्य कर पायेंगे। इस मनोवृत्ति ने गांव में शिक्षा के स्तर को ऊपर नहीं उठने दिया है जो कि सोचनीय स्थिति है।

ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता की समस्याएं

आज ग्रामीण विकास और शिक्षा के लिए पंचायती राज संस्थाओं को उच्च स्तर पर जिम्मेदारी 73वें संविधान संशोधन व विभिन्न राज्यों में पंचायती राज अधिनियम द्वारा सौंपी है। पंचायती राज की स्थापना के बाद विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया में पाठशालाओं को समुदाय की संस्था के रूप में स्थापित करने की कोशिश की गई है परंतु इसका प्रभाव विद्यालय तथा गांव के संबंधों को प्रगाढ़ बनाने में अभी तक सहायक नहीं हो सका है। जार्ज मैथ्यू के अनुसार राज्यों में 73वें संशोधन के शब्दों का पालन किया है- उनकी भावना का नहीं। ग्राम पंचायतों का बहुत ज्यादा राजनीतिकरण हो गया है। पंचायतों के पास वित्तीय स्रोतों का अभाव है और उनके पास प्रशासनिक शक्तियां नाम मात्र की हैं। पंचायती राज संस्थाओं को साफतौर पर अपने कार्यों का पता नहीं है। तीनों स्तरों पर कार्यों का स्पष्टीकरण नहीं है। ग्रामीण विकास की योजनाओं के निर्माण और कार्यान्वयन में पंचायतों के पास कागज़ी तौर पर अधिकार हैं अभी भी महिलाओं, अनुसूचित जाति,

अनुसूचित जनजाति व पिछड़े वर्ग की सक्रिय सहभागिता इन संस्थाओं में नहीं हुई है। ग्रामीण शिक्षा समिति और समुदाय के संबंधों को देखने से पता चलता है कि गांव की आधी जनता को इसके बारे में जानकारी नहीं है। ग्राम पंचायत सदस्यों को भी स्कूली शिक्षा के पर्यवेक्षण के तौर-तरीके अभी पता हनीं है। शिक्षा कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए प्रभावी प्रशिक्षण कार्यक्रम भी नहीं हैं। पंचायतों को स्कूल के निरीक्षण, वार्षिक केलैण्डर बनाने और पाठ्यक्रम को कोई भी नई दिशा देने का अधिकार वास्तविकता से अभी दूर है। पंचायतें ग्रामीण स्तर पर शैक्षिक योजनाओं व कार्यक्रमों को लागू करने का अंतरित भाग हैं। स्थानीय संस्थाओं में परिपक्व और नेतृत्व का अभाव है। गुटबंदी, पक्षपात अभी भी विद्यमान है। लोगों में तकनीकी योग्यता और अन्त: विभागीय समन्वय का अभाव नज़र आता है। इसलिए पंचायतों की सक्रिय व उचित भूमिका की मांग शिक्षा व्यवस्था के लिए जरूरी है।

सार्थक शिक्षा हेतु, उपयोगी और सार्थक पाठ्यक्रम के साथ-साथ सभी सम्बद्ध संस्थानों, समूहों का परस्पर सहयोग जरूरी होता है। पाठ्यचर्या के निर्माण में उसकी विषयवस्तु के चयन में समुदाय की कोई भागीदारी किसी भी स्तर पर नज़र नहीं आती है। बच्चों की शिक्षा और सीखने की प्रक्रिया में समुदाय की भागीदारी इसी वज़ह से दूर खड़ी नज़र आती है। पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में ग्रामीण परिवेश की कमी दिखती हैं। ग्रामीण जरूरतों के हिसाब से पाठ्यक्रम तैयार नहीं किये गये हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने का केन्द्रीय नियंत्रण ग्रामीण क्षेत्र के लिए सही नहीं है। इस तरह गांव के सभी लोग अपनी जिंदगी से सीखते हैं। उनकी जरूरतों के अनुसार उनके अनुभव और आवाज़ को महत्व देना होगा।

सामुदायिक भागीदारी को एक उत्पादन की तरह माना जाता है। आज लोगों में सरकार पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। गांव आत्मनिर्भरता का स्वरूप खोते जा रहे हैं। अधिकांशतया ग्रामीण शिक्षित वर्ग के मन में शारीरिक श्रम करने की इच्छा नहीं है। वह शासन करने वाली नौकरी की तलाश में रहते हैं। इसी मनोवृत्ति से आज शिक्षा में समुदाय की सहभागिता कम होती जा रही है। गांवों में बेरोज़गारी बढ़ रही है।

ग्रामीण शिक्षा को विकास के अन्य कारकों के साथ अन्तर्निहित नहीं समझा जाता है। ज्यादातर शैक्षिक योजनाओं/कार्यक्रमों में समग्रता की गंभीर कमी है जैसे डी.पी.ई.

पी. राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्व शिक्षा अभियान इत्यादि इस तरह के शैक्षिक कार्यक्रमों में कृषि मंत्रालय, स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं के मंत्रालय का सहयोग लिया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं तथा शैक्षिक उपकरणों का अभाव रहता है। आमतौर पर शौचालय नहीं होने की स्थिति में लड़कियों को स्कूल पढ़ने नहीं भेजा जाता है। स्कूलों की घर से भौगोलिक दूरी भी ऐसा ही कारण है। आज प्राइवेट स्कूलों में पूरी सुविधा उपलब्ध होने से उनके प्रति गांव वालों का आकर्षण रहता है। आज गरीब कृषक, मजदूर भी जैसे-तैसे अपने बच्चों को प्राइवेट विद्यालय में पढ़ाने की जी तोड़ कोशिश करता है । इसलिए सरकारी विद्यालयों की शिक्षा गुणवत्ता पर भी ध्यान देना जरूरी है जिससे समुदाय के लोगों की उनमें दिलचस्पी बढ़े।

ज्यादातर शैक्षिक कार्यक्रमों/परियोजनाओं, सुविधाओं की ग्रामीण समुदाय के लोगों को जानकारी नहीं होती है। ग्रामीण शिक्षा समिति भी केवल कागज़ी तौर पर काम करती पाई जाती हैं। ग्रामीण समुदाय में आज भविष्य में बच्चों के कैरियर को लेकर चिंता रहती है। विद्यालय को ग्रामीण समुदाय में शिक्षा प्राप्ति के बाद प्राप्त अवसरों का समुदाय को ध्यान दिलाना जरूरी है। इसलिए जानकारी व सूचना के अभाव में भी समुदाय की ग्रामीण शिाा में भागीदारी नहीं हो पाती है।

ग्रामीण महिलायें शिक्षा में अभी पीछे हैं। जो ग्रामीण बालिकाएं आरंभिक शिक्षा के लिए स्कूलों में जाती हैं, उनमें अधिकांश थोड़े समय बाद ही पढ़ाई छोड़ने के लिए मज़बूर हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में आंगनवाड़ी के माध्यम से स्कूल पूर्व शिक्षा/शिशु शिक्षा चलाई जाती हैं। गांवों में अभिभावक खेत-खलिहान, पशुओं की देखभाल इत्यादि में व्यस्त होते हैं इसलिए आंगनवाड़ी में छोटे बच्चों की शिक्षा व देखभाल हो सकती है। समुदाय का आंगनवाड़ी में सुचारू रूप से संचालन में बहुत सहयोग मिल सकता है। लेकिन अध्ययनों से पता चलता है कि कुछ खास वर्ग की महिलाओं का इन पर अधिकार है। आंगनवाड़ी संचालकों का चयन जिला स्तर के अधिकारियों द्वारा न होकर समुदाय द्वारा होना चाहिए।

विभिन्न ग्रामीण विकास व शैक्षिक योजनाओं को ऊपर से थोपा जाता है क्योंकि उनमें उन लोगों को शामिल नहीं किया जाता है जिनके लिए योजनाएं बनाई जाती हैं।

इसलिए ग्रामीण जन पंचायती राज संस्थाओं को शासकीय एजेंसी जैसा मानते हैं। इस तरह वे मानते हैं कि पंचायतें अपनी ओर से ग्रामीणों के लिए सरकारी योजना के अनुसार कुछ करेंगी। ग्रामीण जन स्वयं अपनी ओर से पंचायतों को सहयोग की पहल नहीं करते हैं। विद्यालय और समुदाय का संबंध भी इसी तरह का स्वरूप रखता है। इस तरह के माहौल में शैक्षिक परियोजनाओं के संचाल में जन समुदाय का सहयोग मिलने की अधिक संभावना नहीं रहती है। योजनाएं गांव की समस्याओं को केन्द्र बिंदु में रखकर नहीं बनाई जाती हैं इसलिए स्थानीय लोगों को विश्वास में लेकर उनके उपयुक्त योजनाएं बनाई जाये।

शैक्षिक नौकरशाही के तौर तरीकों ने भी समुदाय सहभागिता पर प्रश्न चिन्ह खड़े किए हैं। स्कूल संबंधी विषयों पर नौकरशाही का रवैया सामुदायिक सहभागिता के लिए जन समुदाय के साथ सकारात्मक होना बेहद जरूरी है। शैक्षिक योजनाएं सरकारी तंत्र से मुक्त नहीं हैं और दफ्तरी दृष्टिकोण से समुदाय सहभागिता कम हुई है।

ग्रामीण परिवेश में सामाजिक आर्थिक शक्ति संरचना स्थानीय स्तर पर प्रभावशाली है। आर्थिक असमानता ग्रामीण क्षेत्रों में वृहत्त स्तर पर है। गांवों में जमीन का असमान वितरण पूरे भारत में एक गंभीर समस्या के रूप में आज भी है। इसलिए स्थानीय अभिजन अपने प्रभाव के कारण विभिन्न निर्णयों में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और सभी लोगों की विकास प्रक्रिया में भागीदार संभव नहीं हो पाती है। शिक्षा व्यवस्था में भी यह संदर्भ महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

ग्रामीण शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने के विचारणीय सुझाव

73वें संविधान संशोधन के बाद यह मान लिया गया है कि गांवों में जन सहभागिता पंचायतों के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है इसलिए पंचायती राज संस्थाओं का सशक्ति करण बेहद जरूरी है। जार्ज मैथ्यू (2003) ने पंचायती राज की पूर्वाश्यकताएं इस प्रकार बताई हैं कि :

- पंचायतों के स्पष्ट रूप से चिन्हित क्षेत्राधिकार हो।
- उत्तरदायित्वों के अनुपात में पर्याप्त अधिकार।
- अपनी व्यवस्था करने के लिए आवश्यक मानवीय तथा वित्तीय संसाधन हों।
- संघीय ढ़ांचे के दायरे में कार्यकारी अधिकारी हो।

आज पंचायतों को वित्तीय रूप से सशक्त बनाना जरूरी है जिससे पंचायतें स्वयं की नीतियों कार्यक्रमों तथा योजनाओं को वित्तपोषित कर सकें। पंचायती राज संस्थाओं का अपने कार्यों व उत्तरदायित्यों के संदर्भ में अच्छा प्रशिक्षण देना जरूरी है जिससे वे अपनी जिम्मेदारी बखूबी समझ पायें। शैक्षिक योजनाओं के निर्माण में पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी जरूरी है क्योंकि कार्यक्रमों का कार्यान्वयन ज़मीनी स्तर पर इन्हीं संस्थाओं द्वारा संभव है। पंचायती राज संस्थाओं को गुटबाजी, जातिवाद, लैंगिक भेदभाव व राजनीति के अपराधीकरण से दूर रखना जरूरी है। ग्राम सभा को इस पूरी प्रक्रिया में सामाजिक रूप से मजबूत बनाना जरूरी है क्योंकि इसी के द्वारा प्रत्यक्ष लोकतंत्र सुनिश्चित होता है। ग्रामीण शिक्षा समिति कागजी तौर पर कार्य न करे बल्कि इसके कार्यों की चर्चा समुदाय में व्यापक स्तर पर होनी चाहिए। नौकरशाही का पंचायतों के प्रति उदासीन रवैया न हो बल्कि उत्साहजनक होना चाहिए।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार कटारिया (1998) के मत में पंचायती राज में जन सहभागिता बढ़ाने में सहायक कारक समुचित संचार, सूचना का अधिकार, ईमानदारी, जन अपेक्षाओं की पूर्ति, समाजसेवियों और दान-दाताओं का सम्मान, अच्छे कार्य को प्रोत्साहन, जन समस्याओं की जानकारी, समन्वय, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा व प्रशासनिक पारदर्शिता हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा को सामूहिक उत्तरदायित्व के रूप में लिया जाना चाहिए। इसमें समुदाय/पंचायत, शिक्षक तथा अभिभावकों का समान उत्तरदायित्व है। शिक्षा को केवल एक सरकारी जिम्मेदारी या पंचायतों का ही उत्तरदायित्व नहीं माना जाना चाहिए। समाज मे इन तीनों अंगों के प्रयासों से ही शिक्षा के लिए अनुकूल माहौल बनता है। राष्ट्रीय सलाहकार समिति के भाषण में पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था ''जब सहयोग का सवाल भी अगर दफ्तरी जामा पहन लेगा तो बड़ी तकलीफ और परेशानी की बात होगी और वह एक बेजान बात हो जाएगी। जन सहयोग का पहला उसूल है कि आप भी जनता के एक हिस्से हो जाएं, आप दूर से बताने वाले न हों, या दूर से सलाह देने वाले न हों।''

पाठ्यक्रम और ग्रामीण स्थानीय परिस्थितियों में गहरा संबंध होना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माण में उसकी विषयवस्तु के चयन में समुदाय की भागीदारी जरूरी है तभी वह स्थानीय जरूरतों के हिसाब से प्रासंगिक बनेगा। इस तरह चारों ओर के समुदाय से स्कूल के विषयों का संबंध होना चाहिए। साथ ही स्थानीय सरकारों की शिक्षा के सभी

पहलुओं को लेकर भी विद्यालय पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए। इससे संबंद्ध संस्थानों, समूहों का परस्पर सहयोग और सहभागिता अनिवार्य है।

शैक्षिक योजनाओं के निर्माण, कार्यान्वयन पर्यवेक्षण, आवश्यकताएं, प्राथमिकताओं इत्यादि पर समुदाय की सलाह और सहयोग लेना जरूरी है क्योंकि योजनाओं का कार्यान्वयन उन्ही पर होना है। इसलिए शैक्षिक योजनाओं का जन प्रचार होना जरूरी है।

केंद्रीकृत योजना स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान रखने में सफल नहीं रही है इसलिए शिक्षा के नियोजन और प्रबंध का विकेंद्रीकरण आवश्यक है। समुदाय आधारित वित्त पोषित शिक्षा भी एक विकेंद्रीकरण का रूप है। नौकरशाही के तौर-तरीकों और उच्च वर्ग द्वारा आम लोगों को सत्ता में हिस्सेदार न बनने देने की प्रवृति ने विकेन्द्रीकरण को निष्प्रभावी बना दिया है। विकेंद्रीकरण के द्वारा ज़मीनी स्तर के लोगों की भागीदारी लोकतंत्र में होती है। विकेन्द्रीकरण लोगों की जरूरत और मांगों को मुहैया कराता है। स्थानीय जनता की स्थानीय हितों में अभिरूचि जागृत होती है व स्थानीय पहलकदमी उभरती हैं। शैक्षिक विकेंद्रीकरण में स्थानीय स्थिति, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं के अनुकूल शिक्षा का प्रबंध किया जा सकता है। इसमें शिक्षा के कार्य में उससे संबंधित अधिकाधिक व्यक्तियों की सहभागिता का लाभ प्राप्त होता है।

ग्रामीण परिवेश में महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान देना जरूरी है। गांव में ही विद्यालय की बुनियादी सुविधाओं के साथ शैक्षिक अवसर उपलब्ध होने चाहिए। आंगनवाड़ी और पूर्व प्राथमिक शिक्षा की सुचारू व्यवस्था करनी चाहिए ताकि बालिकायें छोटे भाई बहनों की देखभाल में शिक्षा से वंचित न रहें। इससे महिलाओं की समाज व शिक्षा में सहभागिता बढ़ेगी। यदि गांवों में महिलाओं को साक्षर बनाने के लिए ईमानदारी पूर्वक कोशिश की जाए तो ग्रामीण क्षेत्र की बहुत सी समस्याओं का समाधान हो जायेगा।

ग्रामीण रोज़गारपरक व्यवसायों को विद्यालय में विषय के रूप में शामिल करना चाहिए जैसे मिट्टी के बर्तन, लकड़ी का कार्य, कृषि, कुटीर उद्योगों से संबंधित विषय, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, पशु पालन इत्यादि। गांव की भौगोलिक व सांस्कृतिक विशेषताओं के संदर्भ में भी विषय शामिल किये जा सकते हैं।

गांधी जी के ग्रामीण दर्शन में आत्मनिर्भर गांव प्रमुख था। गांधी जी गांवों को स्वावलंबी एवं स्वशासित इकाइयों के रूप में देखना चाहते थे। आत्मनिर्भरता में जन सहभागिता छुपी हुई है। सरकारी प्रयासों व कार्यक्रमों के द्वारा गांवों में स्वयं कार्य करने की भावना जागृत करनी होगी। ग्रामीण लोगों को रचनात्मक कार्यक्रमों से जोड़ना बहुत जरूरी है।

शिक्षा के प्रबंध में स्थानीय सहायता का समुदाय के मनोवैज्ञानिक यत्नों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे समुदाय समस्याओं के समाधान में स्वयं प्रयत्न करता है। स्कूल को सरकारी संस्था न समझकर समुदाय अपनी संस्था मानने लगेंगे। स्थानीय शैक्षिक प्रशासन को स्व-सहायक क्रिया के रूप में बढ़ावा मिलेगा। ग्रामीण शिक्षित वर्ग के मन में शारीरिक श्रम के प्रति इच्छा जगानी होगी। ग्रामीण लोगों के मन में यह भावना जगानी होगी कि शिक्षा का संबंध केवल नौकरी से नहीं है बल्कि यह अंतर्निहित गुणों का विकास भी करती है।

ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का जीवन की प्राथमिकता और अनिवार्य आवश्यकताओं से सीधा संबंध स्थापित किया जाए। स्थान और विद्यार्थियों की परिस्थिति के अनुरूप पाठ्यक्रम रखे जाएं। कुछ इस तरह के शैक्षिक कार्यक्रम चलाए जाएं जो बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की शिक्षा संबंधी जरूरतों को पूरा कर सके। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का उद्देश्य मात्र साक्षरता तक सीमित नहीं होना चाहिए बल्कि यह जीवन स्तर में सुधार के रूप में परिलक्षित होगा तभी किसी सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन की उम्मीद की जा सकती है जो कि सहभागिता बढ़ाने में सहायक रहेगी।

ग्रामीण विकास को समग्र विकास की संकल्पना समझना चाहिए। केवल शैक्षिक व आर्थिक विकास से ही ग्रामीण विकास पूर्ण नहीं होता है। गांवों में पीने के पानी की समस्या, बिजली, स्वास्थ्य साफ-सफाई, सामाजिक कुरीतियां, बढ़ती जनसंख्या, शहरी पलायन, बेरोजगारी इत्यादि की सभी समस्याएं एक दूसरी से जुड़ी हुई हैं। इसलिए ग्रामीण विकास योजनायें समन्वय व अन्तर्निहितता के गुण पर आधारित होनी चाहिए जो कि सर्वांगीण विकास का उद्देश्य लेकर चले। गांव की आर्थिक स्थिति और स्कूल की कार्यात्मक गतिविधियों का सीधा संबंध होता है।

प्रौढ़ साक्षरता केंद्रों को भी शिक्षण व्यवस्था अच्छी तरह अपनानी पड़ेगी ताकि ग्रामीण रूचि के साथ उसमें भाग ले सके। सतत व निरन्तर शिक्षा विभागों को इस दिशा

में अच्छे प्रयास करने चाहिए। स्थानीय शिक्षित युवकों को भी प्रौढ़ शिक्षा के संचालन में जागरूक किया जा सकता है।

अंत में ग्रामीण सरकारी विद्यालयों की शैक्षिक गुणवत्ता सुधारनी होगी। सरकारी विद्यालयों में बुनियादी सुविधाओं को उपलब्ध कराना होगा। विद्यार्थियों के अनुपात में अध्यापकों की भर्ती करनी होगी ताकि सरकारी विद्यालयों पर गांववासी विश्वास कर सकें। यह विद्यालयी व्यवस्था में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने में सहायक रहेगा।

संदर्भ

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, 1948-49, भारत सरकार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964-66, भारत सरकार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1986, भारत सरकार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, (पुनरीक्षा समिति) 1990, भारत सरकार, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, (संशोधित) 1992, भारत सरकार, नई दिल्ली।

बलवंत राय मेहता समिति (1957) रिपोर्ट 1958, भारत सरकार, नई दिल्ली।

दि कांस्टीट्यूशन 73वां संशोधन एक्ट 1992, लॉ, जस्टिस एंड कंपनी एफेयर, भारत सरकार।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (2006), एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली।

वार्षिक रिपोर्ट 2005-06, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

फिफ्टीन एनीवर्सरी चार्टर ऑन पंचायत राज इन्क्लुसिव ग्रोथ थ्रू इन्क्लूसिव गर्वनेन्स, अप्रैल 2008, पंचायती राज विभाग, भारत सरकार।

दि डकार फ्रेमवर्क फॉर एक्शन (2000), डकार, यूनेस्को, फ्रांस

व्यास, हरिप्रसाद (1998), ग्राम स्वराज्य, गांधी जी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद

पं. नेहरू ने कहा था... (1989), कुरूक्षेत्र, फरवरी, प्रकाशन विभाग, दिल्ली

सेन, अर्मत्य, द्रेज, ज्यां (2000), भारत विकास की दिशाएं, राज्यपाल एंड संन्स, दिल्ली

भारद्वाज, देवेन्द्र (2002), योजना, जून, प्रकाशन विभाग, दिल्ली

शेठ, शमता (2000) पंचायत राज, हिमांशु पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

अश्वनी (2002-03), ''73वें संविधान संशोधन के परिप्रेक्ष्य में ग्राम पंचायतों के शैक्षिक उत्तरदायित्व का अध्ययनः मोहम्मदपुर माजरागांव का व्यक्तिवृत अध्ययन'' एम.फिल. लघु शोध प्रबंध कार्य, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

मैथ्यू, जार्ज (2003), भारत में पंचायती राज परिप्रेक्ष्य और अनुभव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

कटारिया, सुरेन्द्र (1998), कैसे बढ़े पंचायती राज में सामुदायिक सहभागिता, कुरूक्षेत्र, फरवरी, प्रकाशन विभाग, दिल्ली

ब्रे, मार्क (1999), ई.एफ.ए., द थिमेटिक स्टडी, कम्युनिटी, पार्टनरशिप इन एजुकेशन, डायमनशन्स वेरियेशन्स एंड इम्पलीकेशन्स, कम्परेटिव एजुकेशन रिसर्च, द यूनिर्वसिटी, हांगकांग

भास्कर राव, दिग्मूर्ति (2001), डिसेंट्राइलेजेंशन मैंनेजमेंट ऑफ एजुकेशन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

नवीन युवा नीति–2008, मध्य प्रदेश, जनसम्पर्क विभाग, http://www.mppinfo.org/mpinfonew/hindi/policies/yuva/index.asp,5/23/2009 (download)

शिक्षा का अधिकार बिल 2005, ड्राफ्ट http://education.nic.in/elementary/right to education bill 2005.pdf, 27.9.08 (download)

झारखंड शिक्षा परियोजना परिषद – ए प्रोफाइल http://www.jepc.nic.in/profile.htm6.8.2009 (download)

छठी प्रशासनिक सुधार आयोग रिपोर्ट http://arc.gov.in/6_3pdf,25.9.08 (download)

ऑवरवियू ऑन कम्युनिटी मोबालाईजेशन अंडर सर्व शिक्षा अभियान ssa.nic.in/submission/overview%20on%20community% 20mobilisation.pdf.15.6.08 (download)

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

शैक्षिक उत्कर्ष के लिए गुणवत्ता में सुधार की लक्ष्यपरक प्रक्रिया

शरद सिन्हा* और जितेन्द्र कुमार लोढ़ा**

सारांश

''शिक्षा'' राष्ट्र के विकास में एक विशिष्ट उत्पादनीय सेवा है, शैक्षिक उत्पादों की गुणवत्ता पर ही सम्पूर्ण राष्ट्र का उत्पादनीय ढांचा एवं उसका स्वरूप निर्भर करता है। किसी भी उत्पादन की गुणवत्ता का स्तर उसकी उत्पति के साधनों (इन-पुटस) से परे नहीं हो सकता। अर्थात् जैसे साधन होंगे, वैसा ही उत्पाद का स्तर होगा- चूंकि उत्पत्ति के साधनों की गुणवत्ता का आधार शिक्षा होती है। अत: शिक्षा की गुणवत्ता का स्तर व स्वरूप परोक्ष रूप से राष्ट्रीय विकास का सबसे प्रमुख घटक है। इस निमित्त शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण का चिन्तन एवं प्रबंधन न केवल सम-सामयिक बल्कि आवश्यकतापरक उपागम भी है। आज के उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में शिक्षा को न केवल वैश्विक सरोकार पूर्ण करने हैं बल्कि राष्ट्रीय व स्थानीय आयामों को भी प्रबंधित करना है। इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण का उपागम एक तरफ तो बाजारिक दृष्टिकोण की कसौटियों पर आधारित होना चाहिए तो वहीं दूसरी तरफ राष्ट्रीय व सामाजिक दायित्वों व अपेक्षाओं से अनुकूलित भी होना चाहिए, तभी जाकर सही मायने में ''शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन की धारणा'' का उदय होगा।

विषयपरक पृष्ठभूमि

आदिकाल से ही मानव जाति स्वभावगत अपने लिए उत्कर्ष के मार्ग तलाश करती आ रही है। अपने जीवन को उच्च स्तर प्रदान करने के लिए उसकी प्रत्येक गतिविधि

* रीडर, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, एन.सी.ई.आर.टी. अजमेर, राजस्थान
** प्रवक्ता (सेवारत-शिक्षा), बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर (चुरू) राजस्थान

। ''लक्ष्यपरक गुणवत्ता'' के समकालीन दर्शन व रचना कौशल पर आधारित रही है। इसलिए जीवन के प्रत्येक प्रयास द्वारा युगों से सभी जातियां, समाज एवं राष्ट्र निरन्तर गुणवत्ता और उच्चतम लक्ष्यों को छूने की होड़ में लगे रहे हैं। इस निमित्त वर्तमान पर्यावरण की पृष्ठभूमि में प्रश्न उठता है कि गुणवत्ता क्या है? प्रत्युत्तर में कहा जा सकता है कि गुणवत्ता एक ऐसा घटक है, जिसके दो मापदण्ड (पैरामीटर) प्रकट होते हैं - एक तो वस्तु या सेवा के विनिर्दिष्ट विशेषताओं का मापदण्ड दूसरा उपभोक्ता (ग्राहक) की सन्तुष्टि। संक्षेप में कहा जा सकता है कि किसी वस्तु या सेवा के उपभोग से उत्कर्ष स्तर के संतोष की प्राप्ति उसकी गुणवत्ता की द्योतक है। अत: गुणवत्ता का मूल स्रोत है- उपभोक्ता की दृष्टि। ब्रिटिश मानक संस्थान (1991) के अनुसार ''गुणवत्ता किसी उत्पाद या सेवा के वे समग्र लक्षण होती है, जो उसके बारे में वर्णित अथवा निहित गुणों को पूरा करने की क्षमता रखती है।'' इसी प्रकार ओकलैण्ड (1989) ने कहा कि ''प्रयोजन व प्रकार्य के अनुरूप वस्तु या सेवा के उपयुक्त होने की मात्रा ही गुणवत्ता है।''

गुणवत्ता के अर्थ का विश्लेषण करने से यह तथ्य स्पष्ट रूप से नजर आता है कि ''गुणवत्ता का सम्बन्ध वस्तु या सेवा के उपभोक्तावादी गुणों से हैं।'' उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण के प्रभावों के चलते आज के युग को ''उपभोक्ता का युग'' या ''गुणवत्ता प्रबन्धन का युग'' कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा, उपभोक्ता जागरण आन्दोलन, गुणात्मक मानक संस्थानों का वैधानिक प्रकटीकरण, उपभोक्ताओं की उच्च आकांक्षाओं एवं गत्यात्मकता के दृष्टिकोण ने आज के आर्थिक एवं सामाजिक पर्यावरण में ''सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन'' (टी.क्यू.एम.) की धारणा को जन्म दे दिया है। सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा इस तथ्य पर बल देती है कि संस्थान की समस्त क्रियाएं व प्रबन्धन तकनीक के तमाम प्रयास अपने अन्तिम उपभोक्ताओं को गुणवत्ता आधारित उत्पाद देने में लगे, जिसके चलते उनकी उच्च स्तरीय संतुष्टि को प्रबंधित किया जा सके।

राष्ट्रीय उत्पादन के त्रिक्षेत्रीय मण्डल में सेवा-क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। सेवा क्षेत्र भौतिक व अभौतिक उत्पादनों का आधार क्षेत्र होता है, यद्यपि राष्ट्रीय उत्पाद के ये तीनों क्षेत्र यथा - प्राथमिक-क्षेत्र, द्वितीयक-क्षेत्र एवं सेवा-क्षेत्र परस्पर एक-दूसरे पर, आगत व निर्गत की दृष्टि से अन्योन्याश्रित हैं। चूंकि सेवा-क्षेत्र में प्रमुख स्थान,

शिक्षा व शिक्षा-व्यवस्था संबंधी सेवाओं का होता है। इसलिए शिक्षा सेवा के समग्र प्रकल्प, राष्ट्र के समग्र विकास के आधार तत्व होते हैं। प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक के बहुआयामी शैक्षिक प्रकल्प राष्ट्र की शैक्षिक मांगों की आपूर्ति का आधार होते हैं। अतः इनकी गुणवत्ता के स्तर पर ही ''शैक्षिक उत्कर्ष'' का उदय सुनिश्चित होता है- अर्थात शैक्षिक उपभोक्ता यथा- विद्यार्थी, अभिभावक, समुदाय एवं नियोक्ता आदि की पूर्ण संतुष्टि का स्वरूप ही शैक्षिक संस्थाओं की गुणवत्ता का द्योतक होता है।

शैक्षिक उत्पादों की उत्कर्षता ही राष्ट्र के अन्य उत्पादों की उत्कृष्टता का आधारभूत घटक होती है, इसीलिए राष्ट्र के शैक्षिक व्यय को निवेश की संज्ञा दी गई है। प्रो. ब्लाग मार्क ने अपनी पुस्तक ''इनवेस्टमैन्ट टू दि इकॉनोमिक्स ऑफ एजुकेशन'' में शिक्षा को आर्थिक जगत का शत-प्रतिशत लाभ देने वाला विवेकशील, अनिवार्य एवं आधारभूत विनियोग कहा है। मार्क का मानना है कि शिक्षा के क्षेत्र में लगाया गया धन राष्ट्र को बहुआयामी प्रतिफल प्रदान करता है साथ ही सुदृढ़ आर्थिक ढांचे के निर्माण में एक आवश्यक घटक का कार्य भी करता है। शिक्षा व उसकी गुणवत्ता के स्तर के महत्व को समझते हुए सोवियत रूस के अर्थशास्त्री स्ट्रमलिन ने 1919 में लेनिन को एक पत्र लिखकर चेतावनी दी थी कि ''यदि शिक्षा व उसकी गुणवत्ता पर वांछित निवेश नहीं किया गया तो इस्पात के कारखानों और मशीन-टूल-फैक्ट्रियों के साथ-साथ विशाल औद्योगिक उपक्रम भी चरमरा कर बैठ जाएंगे।'' इसी प्रकार डॉ. एच.एस. पानेस का कहना है कि ''इस्पात का कारखाना उस समय तक अर्थहीन है, जब तक उसके लिए आवश्यक इंजीनियर, तकनीशियन, कुशल कारीगर एवं श्रेष्ठ प्रबन्धक आदि का प्रावधान न किया जाए।'' स्पष्ट है कि राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली का मुख्य कार्य, देश की उत्पादन प्रवृत्तियों हेतु योग्य कार्यकर्ता उपलब्ध कराना है। इस निमित्त दिशापरक आवश्यकता यह है कि शिक्षा प्रणाली को राष्ट्र की उत्पादनीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाए। इस प्रकार के आवश्यकतापरक तत्व चिन्तनों से आज शिक्षा में गुणवत्ता नियन्त्रण, गुणवत्ता आश्वासन एवं सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन जैसी अवधारणाओं का उदय हुआ है।

आज के युग की विशेषताओं व आवश्यकताओं को देखकर स्पष्ट है कि शिक्षा के सभी स्तरों पर, गुणवत्ता सरोकार का एक मुख्य विषय है। आर्थिक भूमण्डलीकरण

के साथ-साथ शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता की मांग भी बढ़ी है। विश्वभर में गुणवत्ता से सरोकार रखने वाले सभी पदों के प्रबन्धन का स्वरूप व्यापक महत्त्व लेता जा रहा है। शिक्षा का समाज व राष्ट्र के अनेक उपभोक्ताओं से प्रत्यक्ष सरोकार है- इसलिए शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा का चलन बढ़ा। आज वही शैक्षिक संस्थान सार्थक व प्रासांगिक हैं, जो लक्ष्यपरक चुनौतियों का सामना करते हुए अपने अन्तिम उपभोक्ता यथा- विद्यार्थी, अभिभावक, समुदाय एवं नियोक्ता आदि की अपेक्षाओं को पूर्ण कर, उन्हें अपनी सेवाओं से उच्च स्तर का संतोष प्रदान करें। इसके लिए किसी भी शैक्षिक प्रकल्प की समस्त गतिविधियां व प्रबन्धन विज्ञान की तमाम क्रियाएं अपने अन्तिम उपभोक्ता को उच्चस्तरीय व समसामयिक संतोष प्रदान करने के निमित्त आयोज्य हों, तो ऐसे पर्यावरण की उपस्थिति को हम शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा का समावेश कह सकते हैं। ध्यातव्य है कि शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की धारणा का आशय अपने अन्तिम उपभोक्ताओं की अपेक्षा पूर्ति से भी कहीं कुछ अधिक है, क्योंकि इसके साथ सामाजिक, राष्ट्रीय एवं वैश्विक सरोकार भी जुड़े हुए हैं। इसीलिए हेन्डेरिक्स (1992) ने कहा कि ''शिक्षा के उत्पाद की अंतरंग वैधता (प्रमाण्य) तब प्राप्त होगी जब वह अन्तिम सेवा लक्ष्य (मिशन) की पूर्ति कर पाती है- इसलिए आज शिक्षा के सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन के क्षेत्र में शिक्षा के केवल संगठनात्मक व संस्थानिक व सोपानिक प्रकल्प ही शामिल नहीं है बल्कि- दूरस्थ-शिक्षा, अनौपचारिक-शिक्षा, मूल्य व शांति-शिक्षा, समेकित-शिक्षा, किशोरावस्था-शिक्षा, पर्यावरण-शिक्षा, आपदा प्रबंधन-शिक्षा, जीवन कौशल-शिक्षा, स्वास्थ्य-शिक्षा, पारिवारिक जीवन-शिक्षा, स्त्री-शिक्षा एवं अल्पसंख्यकों की शिक्षा जैसे अनेक आवश्यकता आधारित उपागम भी शामिल हैं। अत: शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की धारणा में अन्तिम उपभोक्ता के रूप में वैयक्तिक इकाई भी हो सकती है तो सामूहिक लक्ष्यपरक समूह भी हो सकता है, दोनों स्वरूपों के संतुष्टि स्तर की आपूर्ति, शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन का मुख्य लक्ष्य व निष्पादन प्रक्रिया का मुख्य आधार होता है।

गुणवत्ता प्रबंधन की प्रक्रिया में ''गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण'' एक प्रमुख सोपान व लक्ष्यपरक कदम होता है, जिस पर चलकर ही शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन की धारणा को साकार रूप दिया जा सकता है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में किसी

वस्तु या सेवा का बाजार या समाज में अस्तित्व तब तक ही होता है, जब तक की वह वस्तु या सेवा, उपभोक्ताओं की अपेक्षाओं के अनुकूल अपनी गुणवत्ता को सुनिश्चित किये हुए रहती है। गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की प्रक्रिया उपभोक्ता को गुणवत्ता की दृष्टि से सर्वोच्च संतुष्टि स्तर का गारण्टीयुक्त आश्वासन प्रदान करती है। इस निमित्त समाज व राष्ट्र में गुणवत्ता के मानक संस्थान वैधानिक तौर पर भी स्थापित हैं, जिनसे गुणवत्ता संबंधी प्रमाणपत्र लेकर उत्पादनीय सेवा संस्थान अपने उपभोक्ता को अपनी सेवा या वस्तु के संबंध में गुणवत्ता सुनिश्चितकरण प्रदान करते हैं।

इस दिशा में शैक्षिक सेवा क्षेत्र में भी गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण के आवश्यक वैधानिक संस्थान भी अनिवार्य रूप से प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ भारत में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता की दृष्टि से राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (नॉक), दूरस्थ शिक्षा की दृष्टि से दूरस्थ शिक्षा परिषद् (डैक), तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में ए.आई.सी.टी.ई., अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में एन.सी.टी.ई. आदि जैसे अनेक संस्थान प्रचलित हैं, जो अपने गुणवत्ता नियामक एवं प्रमाणन स्वभाव के अनुसार बहुत हद तक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण का आश्वासन दे पाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आई.एस.ओ. मानक संस्थान भी शैक्षिक संस्थानों की संसाधनीय गुणवत्ता के संबंध में आश्वासन प्रदान कर गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की प्रक्रिया को सबलता प्रदान कर रहा है। इन सबके चलते आज के शैक्षिक बाजार में भी गुणवत्ता-संस्कृति स्वभाव में प्रस्फुटित हो गई है। आज के बाजारवादी एवं उपभोक्तावादी पर्यावरण के अन्तर्गत, शैक्षिक संस्थानों में भी गुणवत्ता के आधार पर रैंकिंग प्रणालियों का विकास हो गया है साथ ही वर्तमान में उपभोक्ता जागरूकतावादी पर्यावरण के सबल होने से गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की अवधारणा ओर अधिक व्यापक एवं विकसित हो गई है।

अत: आज के विषयपरक पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में उपभोक्ता केन्द्रित वैश्विक अर्थव्यवस्थाएं स्थापित हो गयी हैं। फलन शिक्षा के प्रत्येक उत्पादनीय क्षेत्र को गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण के लिए, गुणवत्ता प्रबंधन की व्यूह रचना को, प्रक्रियात्मक स्वरूप में अपनाकर न केवल स्वयं के शैक्षिक उत्कर्ष को सिद्ध करना होगा, बल्कि उसे दिशापरक प्रमाणन भी प्रदर्शित करना होगा, तभी जाकर वह शैक्षिक संस्थान उपभोक्ता के लिए चयनात्मक इकाई बन पाएगा, क्योंकि आज उसके पास अनेक विकल्प हैं... इस निमित्त शैक्षिक सेवा संस्थानों द्वारा यदि समसामयिक स्वरूप में वैश्विक

आयाम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, क्षेत्रीय आयाम एवं बाजारीकरण की पृष्ठभूमियों आदि को ध्यान में रखकर गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की अवधारणा को अपनाया जाता है, तो यह उनका एक समझदारी भरा कदम होगा। जिसकी आज एक अस्तित्व परक महती आवश्यकता है।

शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की अवधारणा

शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण से आशय उस लक्ष्यपरक प्रक्रिया से है, जो शैक्षिक गुणवत्ता संबंधी समस्याओं के प्रबन्धन, शैक्षिक उत्कर्ष के प्रमाण सहित शैक्षिक उपभोक्ताओं को सर्वोच्च संतुष्टि का आश्वासन प्रदान करती है। इस प्रकार शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण से आशय ''विद्यार्थियों, अभिभावकों, नियोक्ताओं एवं समाज की अपेक्षाओं के अनुकूल सर्वोच्च व आवश्यकतापरक शैक्षिक मानकों के आधार पर सीखने व सिखाने के पर्यावरण का प्रमाण सहित, आत्मविश्वास से भरा अंकेक्षणयुक्त प्रकटीकरण है जिसमें गुणवत्ता संबंधी शंकाओं व समस्याओं के निराकरण का आश्वासन गारंटीयुक्त भाव में होता है।''

शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की आवश्यकता

भूमण्डलीकरण के इस दौर में शिक्षा जगत के भी अनेक वैश्विक सरोकार हो गए हैं। आज शिक्षा जगत में वैश्विक डिलेवरी, विद्यार्थियों की गतिशीलता, सीखने के नये आयामों के उदय के साथ-साथ उपभोक्ता जागरण काल व सामाजिक प्रतिबद्धताओं जैसे मुद्दों के चलते आज गुणवत्ता के आवश्यक मानदण्डों पर आधारित शैक्षिक उत्पादों की मांग बढ़ी है। इस कारण लक्ष्यपरक शैक्षिक पर्यावरण प्राप्त करने हेतु शैक्षिक उत्पादों में भी गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण का दौर स्थापित हुआ है। आज के अभिभावक अपनी संतति को गुणवत्ता आश्वासन प्रदान करने वाले शैक्षिक संस्थानों में प्रवेश दिलाना चाहते हैं ताकि उसकी ब्रैंड-इमेज से उन्हें उच्च रोजगार के अवसर प्राप्त हों। वहीं दूसरी ओर नियोक्ता भी उन्हीं शैक्षिक संस्थानों के उत्पादों को अपने यहां के सेवीवर्गीय नियोजन में वरीयता प्रदान करते हैं, जो गुणवत्ता की तमाम कसौटियों पर खरे उतरते हैं। इस कारण राष्ट्रीय शैक्षिक पटल पर ''गुणवत्ता सुनिश्चितकरण'' एक समसामयिक, आवश्यकतापरक एवं वैधानिक दायित्वों से परिपूर्ण एक राष्ट्रीय कदम है, जिसके चलते आज अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के गुणवत्ता आश्वासन संस्थानों का उदय हो

गया है- जो शैक्षिक उत्पादों की गुणवत्ता के न केवल मानक निर्धारित करते हैं, बल्कि उनकी प्राप्ति हेतु उचित मार्गदर्शन की सेवाओं को भी प्रदान करते हैं।

भारत में भी उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण हेतु यू.जी.सी. द्वारा 1970 में स्वायत्त संस्थान के रूप में ''राष्ट्रीय मूल्याकंन एवं प्रत्यायन परिषद'' (नॉक) की स्थापना की गई, जो राष्ट्र के उच्च शिक्षा संस्थानों के शैक्षिक उत्पादों के दृष्टिकोण से अंकेक्षण कर ''गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण'' का प्रमाणन प्रदान करता है। इसके अलावा विभिन्न व्यावसायिक शिक्षण संस्थानों को मान्यता प्रदान करने वाले गवर्निंग संस्थान भी इस पहलू के आधार पर दिशापरक शैक्षिक संस्थानों को ही मान्यता प्रदान करते हैं। अत: आज के शैक्षिक संस्थानों के लिए मान्यता की वैधानिक कार्यवाही की आपूर्ति, शैक्षिक अनुदानों की प्राप्ति के साथ-साथ आज की बाजारिक सफलताओं हेतु ''गुणवत्ता आश्वासन मानक संस्थानों'' की उत्पाद गुणवत्ता आश्वासित मुहर प्राप्त करना एक अनिवार्य व आवश्यकता आधारित प्रक्रम है।

अनेक शैक्षिक उत्पाद विशेषज्ञों की राय व मानक संस्थानों की इस दिशा की अभ्यासात्मक प्रक्रियाओं के चलते आज अनेक शैक्षिक प्रभागों व उनके अपेक्षित मानकों का निर्धारण हुआ है। भारत में उच्च शिक्षा में गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण के लिए स्थापित संस्थान नैक ने शैक्षिक संस्थानों की गुणवत्ता निर्धारण के सात क्षेत्र निर्धारित कर अपेक्षित क्रियान्वितियों का सूचीबद्ध मार्गदर्शन भी प्रदान किया है। इस क्रम में आस्ट्रेलिया की शैक्षिक उत्पाद विशेषज्ञ यॉनी रैन के समसामयिक आलेख ''हायर एजुकेशन एज ए बिजनेस : लेसन फ्रॉम द कॉरपोरेट वर्ल्ड'' में विवेचित किया है कि आस्ट्रेलिया किस प्रकार शैक्षिक उत्पाद ब्रांड की दिशा में कार्य करे? अत: इस प्रकार के सभी संकेत व वैश्विक प्रवृत्ति इस तथ्य का प्रकटीकरण करते हैं कि भावी शैक्षिक संसार में उन्हीं शैक्षिक संस्थानों का अस्तित्व रहेगा, जो गुणवत्ता प्रमाणन से अपनी एक पहचान बनाकर उपभोक्ताओं को संस्थान-मुखी बनाएंगे।

शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण हेतु व्यूह रचनात्मक प्रबन्धन प्रक्रिया

शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण का प्रबन्धन प्रक्रियात्मक स्वरूप में संरचित होता है। जिसमें संस्थान के सरोकारित समूह (स्टेकहोल्डर्स) की अपेक्षाओं को केन्द्र में रखकर,

संस्थान के सभी साधन व शैक्षिक–नीतियां एकीकृत स्वरूप में गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण के मुख्य घटकों यथा– सरकारी शैक्षिक–नीति, स्वायत्त व अर्द्धस्वायत्त मानक संस्थान, सुस्पष्ट मानक व अपेक्षाएं, शैक्षणिक संस्थान का स्व–अध्ययन स्तर, लिखित संस्तुतियां व निर्देश, सरोकारित समूह की रिपोर्ट, संस्थान की क्षमता व परिणाम एवं बाह्य पक्षकारों का अवलोकन आदि को मद्देनजर रखते हुए व्यूह रचना का निर्माण कर, गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण प्रक्रिया के मानचित्र की अवधारणा एवं उसके तंत्र को साकार रूप दिया जा सकता है।

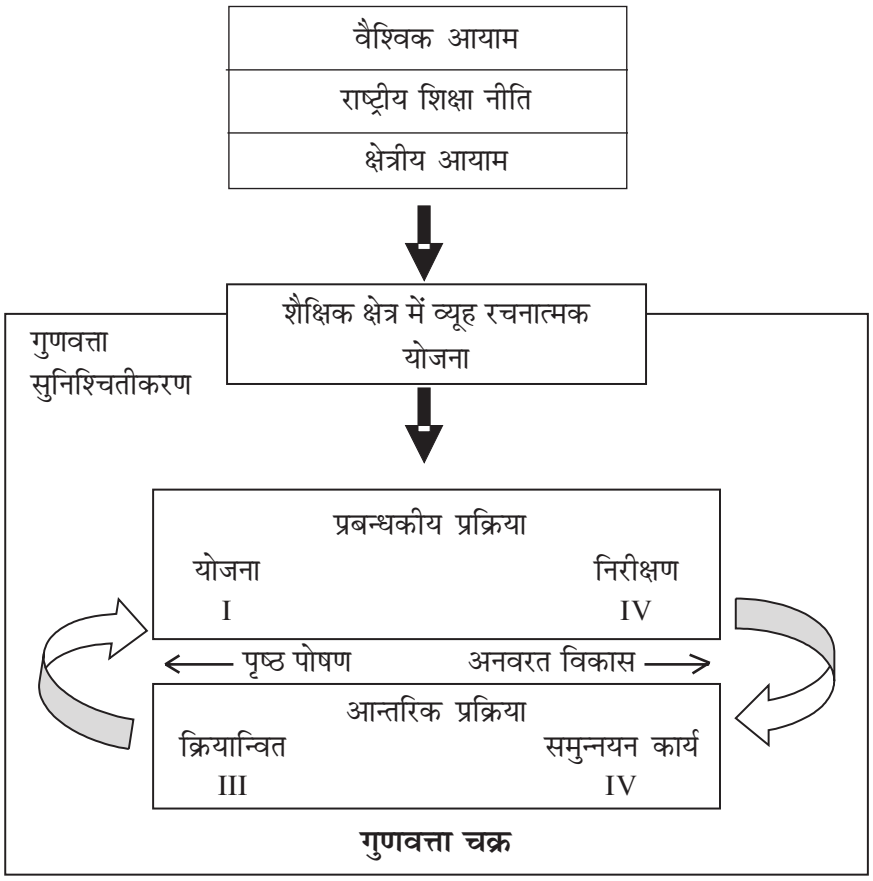

गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण का व्यूह रचनात्मक मानचित्रीय दृष्टिकोण

गुणवत्ता मानचित्र की अवधारणा–प्रबन्धकों, संगठन के सदस्यों, बाह्य मूल्यांकन कर्त्ताओं तथा सरोकारित समूह आदि को गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण के तंत्र के बारे में व्यापक जानकारी प्रदान करती है। इस प्रकार गुणवत्ता मानचित्र की अवधारणा सड़कों के मानचित्र की भांति गंतव्यों का भान कराती है तथा एक ऐसी ढांचागत व्यूह रचना प्रदान करती है, जिसमें वैश्विक, राष्ट्रीय एवं स्थानीय शैक्षिक पर्यावरण व अपेक्षाओं के अनुरूप शैक्षिक उत्पाद को सुनिश्चित किया जाता है। गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण के निर्धारण की व्यूह रचनात्मक मानचित्र का परिचय कपलॉन व नॉर्टन (2004) ने दिया जो आरेख से स्पष्ट है– कि गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण एक आवश्यकतापरक प्रबंधकीय उपागम है, जिसकी प्राप्ति प्रबंधकीय व्यूह रचनाओं पर निर्भर है– शैक्षिक योजना में वैश्विक आयाम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति तथा क्षेत्रीय आयामों के पर्यावरण को शामिल कर प्रबंधकीय प्रक्रिया में डब्ल्यू एडवर्डस डेमिंग (1986) के गुणवत्ता चक्र को अपनाकर संस्थान के शैक्षिक उत्पाद की गुणवत्ता का अनवरत विकास किया जा सकता है।

शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण का मुख्य आधार : गुणवत्ता अंकेक्षण

किसी भी शैक्षिक संस्थान के उत्पाद की स्थायी मांग के स्वरूप को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब वह उत्पाद अपनी गुणवत्ता के आधार पर अपनी पहचान बना ले। अर्थात् उत्पाद के संबंध में सरोकारित वर्ग आश्वासित हो कि अमुक संस्थान का विद्यार्थी है, तो नि:सन्देह वह लक्ष्यपरक एवं आवश्यकतापरक इकाई होगा। इस प्रकार की स्थितियां व विश्वास सरोकारित वर्ग के मस्तिष्क में घर कर जाती है तो उसे बाजारिक भाषा में उत्पाद की ''ब्रेन्ड इमेज'' कहते है। गुणवत्ता के इस स्तर को प्राप्त करने के बाद संस्थान का उत्पाद गुणवत्ता का पर्याय बन जाता हैं– ऐसा तभी हो पाता है, जब वर्षों से उत्पाद की गुणवत्ता को न केवल अक्षुण स्वरूप में प्रबंधित किया जाता रहा हो, बल्कि इस प्रक्रिया के साथ–साथ गुणवत्ता के संवर्द्धन के नये मानक भी उत्पाद के साथ अनवरत रूप से जुड़ते रहे हों। इस प्रकार उत्पाद की मांग उसकी गुणवत्ता के आधार पर बनी रहे, सरोकारित वर्गों का विश्वास भंग न हो इस निमित्त गुणवत्ता प्रबंधन प्रक्रिया में गुणवत्ता नियंत्रण हेतु ''गुणवत्ता अंकेक्षण'' की अवधारणा को अंगीकार करना इस दिशा का एक अनिवार्य प्रक्रम होता है।

वित्तीय अंकेक्षण की भांति गुणवत्ता अंकेक्षण की अवधारणा, संस्थान के उत्पाद की गुणवत्ता के संबंध में अनवरत निरीक्षण व जांच कर रिपोर्ट प्रदान करता है कि संस्थान अपने उत्पाद के संबंध में गुणवत्ता के स्तर व मानकों के आधार पर कहां खड़ा है? आई.एस.ओ. 8402 द्वारा (1986) में वर्णित किया गया कि ''गुणवत्ता अंकेक्षण एक सुनियोजित स्वतंत्रात्मक परीक्षण है, जिसमें उत्पाद या सेवा का मूल्याकंन उसकी गुणात्मक उन्नयन की गतिविधियों व उनके परिणामों के आधार पर किया जाता है। अत: गुणवत्ता अंकेक्षण, संस्थान के उत्पाद के अक्षुण अस्तित्व को प्रबंधित करने का आवश्यक एवं स्वतंत्र परीक्षण है, जिसके परिणामों के चलते वर्तमान के मानकीकृत, गत्यात्मक एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक युग में संस्थान को अपने उत्पाद के सरोकारित वर्ग की अपेक्षाओं एवं वैधानिक व प्रचलित मानक संस्थानों के निर्धारित मानकों की कसौटी पर अपने उत्पाद की गुणवत्ता की दशा व दिशा का भान होता है।

शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की प्रभागात्मक अपेक्षाएं

किसी भी उत्पाद की मांग, उस उत्पाद में अन्तर्निहित उन गुणों पर निर्भर करती है, जो गुण उस उत्पाद के सरोकारित वर्ग की आवश्यकताओं व अपेक्षाओं को पूरा करते हैं। अत: सरोकारित वर्ग की आवश्यकता व अपेक्षायें ही उत्पाद की गुणवत्ता की आधार कसौटियां होती है- चूंकि शिक्षा एक ऐसी सरोकारित सेवा या उत्पाद है, जिसकी गुणवत्ता के आकलन में राष्ट्रीय एवं वैयक्तिक दोनों सरोकारों को समन्वित करना होगा क्योंकि शिक्षा जहां एक ओर वैयक्तिक विकास का आधार है तो वही दूसरी ओर राष्ट्रीय एवं वैश्विक सेवा लक्ष्य की पूर्ति के साथ-साथ अन्य विकासों का आधार भी है। इस क्रम में शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की प्रक्रिया में सरोकारित वर्ग की अपेक्षाओं का स्वरूप वैयक्तिक भी है, सामूहिक भी है, भूमण्डलीकरण के प्रभाव के चलते वैश्विक भी है। ऐसे में शिक्षा को गुणवत्ता के पटल पर ऐसी समन्वयकारी प्रबंधनीय भूमिका का निवर्हन करना है, जिससे सभी प्रकृति के सरोकारित वर्गों की अपेक्षाओं की पूर्ति हो सके। शैक्षिक गुणवता सुनिश्चितीकरण के विषय पर आज अनेक वैधानिक एवं प्रचलित संस्थान अपनी लक्ष्यपरक सेवाएं प्रदान कर रहे हैं जिनकी स्थापना सरकार द्वारा विषय की गम्भीरता के देखते हुए अनिवार्य स्वरूप से की गई है तो वहीं दूसरी ओर बाजारिक मांगों के चलते शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की अवधारणा, किसी भी शैक्षिक संस्थान की अस्तित्वकारी प्रक्रिया भी बन चुकी है। इस

निमित्त आज शिक्षा जगत में शिक्षण, अधिगम एवं मूल्याकंन का पर्यावरण, पाठ्यक्रम, परामर्श, शोध एवं विस्तार सेवाओं के साथ-साथ उनका ढांचागत स्वरूप शैक्षिक संस्थान की गुणवता की प्रमुख कसौटियां बन हैं। शैक्षिक गुणवत्ता नियंत्रण संबंधी वैधानिक संस्थानों के साथ-साथ प्रचलित मानक संस्थानों द्वारा ''गुणवत्ता प्रमाणन'' की मुहर शैक्षिक संस्थानों के सरोकारित वर्गों की प्रभागात्मक अपेक्षाओं एवं संस्थान में उनकी आपूर्ति की उपस्थिति स्वरूप को देख कर प्रदान की जाती है। इस प्रकार शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की प्रक्रिया में सरोकारित वर्ग की प्रभागात्मक अपेक्षायें एक ओर अपने उत्पाद की गुणवत्ता अंकेक्षण कसौटी है, तो वहीं दूसरी ओर राष्ट्र विकास एवं वैधानिक आपूर्ति का आधार भी है। इस निमित्त शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की प्रभागात्मक अपेक्षाओं एवं उनके समुन्नयन क्रियान्वय के स्वरूप अग्रतालिका के माध्यम से प्रकट किया जा रहा है।

शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितकरण हेतु प्रभागात्मक अपेक्षाएं व समुन्नयन क्रियान्विति तालिका

गुणवत्ता सुनिश्चितकरण की प्रभागात्मक अपेक्षाएं	आधारभूत समुन्नयन कार्यक्रम
1. पाठ्यक्रम एवं पाठ्य आधारित पहलुओं की अपेक्षाएं	1.1 सामाजिक मांग के अनुसार पाठ्यक्रम का डिजाइन व विकास। 1.2 गत्यात्मकता के आधार पर पाठ्यक्रम में लचीलापन। 1.3 पाठ्यक्रम में ग्राहकोन्मुख अभ्यासात्मक दृष्टिकोण विकसित करना। 1.4 समसामयिकता व अद्यतनता के उपागमों को समावेशित करना। 1.5 पाठ्यक्रम संबंधी अपेक्षित पृष्ठपोषणीय कार्यक्रम सुनिश्चित करना। 1.6 स्ववित्तीय पाठ्यक्रम का संचालन एवं वैकल्पिक दृष्टिकोणों को तलाशना। 1.7 पाठ्यक्रम को स्थानीय उपभोक्ता व स्थानीय मूल्यों से अनुकूलित रखना।

2. शिक्षण व अधिगम तथा मूल्यांकन संबंधी अपेक्षाएं	2.1 सीखने व सिखाने के प्राप्य उद्देश्य व लक्ष्यों का आवश्यकता-परक निर्धारण व स्पष्टीकरण।
	2.2 सीखने व सिखाने की सम्यक् व उचित समसामयिक तकनीक का निर्धारण।
	2.3 विद्यार्थियों को आवश्यक व उचित वैयक्तिक सबलता प्रदान करना।
	2.4 कक्षा-शिक्षण में योजना आधारित अतिरिक्त स्रोतों का प्रावधान व निर्धारण।
	2.5 अधिगम संसाधनों का समुचित सदुपयोग तथा नये साधनों का विकास।
	2.6 कक्षा अन्तर्गत तथा प्रयोगशालाओं में आवश्यकतानुकूल अद्यतन शिक्षण विधियों, प्रयोगों, क्रियात्मक कार्य तथा अधिगम नवाचार अभ्यासों की व्यावहारिक क्रियान्विति की रूपरेखा का निर्माण।
	2.7 कक्षा-शिक्षण में विशिष्ट विद्यार्थियों के शिक्षण के प्रावधानों को समेकित करने के कार्यक्रमों का निर्धारण।
	2.8 शिक्षण व अधिगम प्रक्रिया को कक्षा-कक्ष से बाहर निकालकर लक्ष्य आधारित स्थल पर कहीं भी किसी भी स्थान पर शिक्षण व अधिगम की धारणा को बल प्रदान करना।
	2.9 जिज्ञासा संवर्द्धन करने वाले शिक्षण अधिगम के पर्यावरणीय कारकों को बल देना।
	2.10 शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सहभागिता एवं स्वयं सीखने के अवसरों को उच्च स्तर पर निर्धारित करना।
	2.11 शिक्षण व अधिगम के संबंध में विद्यार्थियों के पृष्ठपोषणीय कार्यक्रमों को अनिवार्य रूप से समावेशित करना।
	2.12 प्रत्येक अध्ययन कार्यक्रम की प्रकृति के अनुसार विद्यार्थियों व अध्यापकों के अनुपात को अनुविन्यासित करना।
	2.13 आंतरिक मूल्याकंन की विश्वसनीयता व वैधता को संस्थापित करना।

	2.14 मूल्यांकन कार्यक्रम को विद्यार्थियों के कार्य निष्पादन व सम्पूर्ति, व्यवहार तथा आचरण के वस्तुनिष्ठ पहलुओं पर केन्द्रित करना। 2.15 सतत मूल्याकंन के तंत्र को स्थापित करना।
3. शोध, परामर्श एवं विस्तार सेवा संबंधी अपेक्षाएं	3.1 गुणवत्ता संवर्द्धन कार्यक्रमों के अनुसंधानों के पुनरावलोकन के साथ-साथ आवश्यक व नवीन मानकों के विकास व अनुकूलन हेतु शोध कार्यक्रमों का निर्धारण करना। 3.2 अनुसंधान व परामर्श आधारित संचालन व व्यवस्थापन संबंधी कार्यप्रणाली विकसित करना। 3.3 शोध व प्रकाशन गतिविधियों को उत्कर्ष स्वरूप में प्राप्त करना। 3.4 संकाय के शिक्षकों व विद्यार्थियों में शोध,परामर्श तथा प्रसार क्षेत्र की संस्कृति विकसित करना। 3.5 शोध, परामर्श एवं विस्तार क्षेत्र के विकास की दृष्टि से इस दिशा की विशिष्ट संस्थाओं के साथ सहभागिता सुनिश्चित करना। 3.6 शोध,परामर्श व विस्तार कार्यों का आदतन स्वरूपी सर्वोच्च अभ्यासात्मक कार्यक्रमों पर बल देना।
4. ढांचागत संरचना तथा अधिगम संसाधन संबंधी अपेक्षाएं	4.1 शैक्षिक उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, पाठ्यक्रमों के अपेक्षित मानकों के अनुसार भौतिक संसाधनों व अधिगम स्रोतों की व्यवस्था करना। 4.2 शैक्षिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण के आवश्यक व वैधानिक संस्थानों द्वारा प्रदत मानकों के आधार पर भौतिक संसाधन व अधिगम स्रोतों का प्रबंधन करना। 4.3 विद्यार्थियों की वैश्विक गतिशीलता की मांग को देखकर अधिगम स्रोतों का निर्धारण करना। 4.4 कार्य-विभाजन व विशिष्टीकरण की तकनीक के आधार पर ढांचागत संरचना व अधिगम स्रोत निर्धारित करना। 4.5 प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय, सूचना-संप्रेषण तकनीक आधारित सीखने के स्रोत, एजुसैट कार्यक्रम, खेलकूद, मनोरंजन, कफेटेरिया एवं दृश्य-श्राव्य शिक्षण सामग्री इत्यादि का प्रबंधन, संचालन व सदुपयोग निर्धारित करना।

5. विद्यार्थी समर्थन कार्यक्रमों की अपेक्षाएं	5.1 विद्यार्थियों को अद्यतन शैक्षिक सुविधाएं उपलब्ध करवाना यथा–इलेक्ट्रानिक शिक्षण सहायक सामग्री, कम्प्यूटर शिक्षा, परामर्श सेवाएं, अभिप्रेरणात्मक कार्य, अध्ध्यन उपरांत पदस्थापन की सेवाएं आदि। 5.2 गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण व इस दिशा के विकास प्रक्रिया के निर्णयों में विद्यार्थियों की सहभागिता सुनिश्चित करना। 5.3 संस्थान की योजना, निर्णय प्रक्रिया व क्रियान्विति प्रक्रियाएं विद्यार्थी केन्द्रित होनी चाहिए। 5.4 छात्र परिषद व पुरातन छात्र संघ का निर्माण करना। 5.5 छात्र आर्थिक सहायता कार्यक्रमों का निर्धारण करना।
6. सहभागी शैक्षिक कार्यक्रमों के संबंध में अपेक्षाएं	6.1 विभिन्न विभागानुसार शैक्षणिक प्रतिस्पद्धाओं का आयोजन कराना। 6.2 मनोरंजन, सांस्कृतिक एवं खेलकूद कार्यक्रमों का आयोजन कराना। 6.3 प्रदर्शनी, देशाटन एवं कार्यानुभव के कार्यक्रम आयोजित करना। 6.4 सामुदायिक सेवा कार्यक्रम सुनिश्चित करना। 6.5 स्वास्थ्य सुरक्षा, योगाभ्यास व श्रमदान कार्यक्रमों को आयोजित करवाना। 6.6 पर्यावरण सरंक्षण व संवर्द्धन तथा आपदा प्रबंधन के कार्यक्रम करवाना। 6.7 नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं मूल्यपरकता के कार्यक्रम का आयोजन। 6.8 कला–संस्कृति समुन्नयन कार्यक्रमों का आयोजन। 6.9 वैज्ञानिक दृष्टिकोण व प्रतिभाएं उन्नयन के कार्यक्रम।
7. शैक्षिक पर्यावरण के उन्नयन संबंधी अपेक्षाएं	7.1 शिक्षकों के वृत्तिक विकास का प्रबंधन व अवसर निर्माण के कार्य। 7.2 संस्थान में सेमीनार, कार्यगोष्ठी, अभिमुखी–कार्यक्रम एवं पुनश्चर्या–कार्यक्रमों का आयोजन कराना एवं इस दिशा के अवसरों में शिक्षकों व विद्यार्थियों की अनवरत सहभागिता सुनिश्चित करना।

	7.3 शिक्षक अभिभावक संघ का निर्माण कर शैक्षिक पर्यावरण के सबलता के कार्यक्रम निर्धारत करना। 7.4 अन्य संस्थानों से जुड़ाव व अनुभव आदान-प्रदान के कार्यक्रमों का आयोजन करना।
8. प्रशासन व नेतृत्व संबंधी अपेक्षाएं	8.1 गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की दृष्टि से शैक्षिक उपभोक्ताओं की अपेक्षाओं का आकलन हेतु सर्वेक्षण कराना। 8.2 प्रशासनिक नेतृत्व को योजनापक्ष, संगठनात्मक वातावरण, संसाधनों का प्रबंधन, परिवीक्षण एवं परामर्श, निर्णय प्रक्रिया व उनकी अनुपालना के दृष्टिकोण को शैक्षिक उपभोक्ताओं की अद्यतन अपेक्षाओं के अनुसार रखना। 8.3 गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण की दृष्टि से सुदृढ़ अंकेक्षण-तंत्र की स्थापना करना। 8.4 संस्थागत लक्ष्यों का मूल्याकंन व प्राप्य उत्पाद का सतत मूल्याकंन सुनिश्चित करना। 8.5 बाजारिक उपलब्धताओं व वास्तविक समस्याओं के आंकलनीय कार्य करना।
9. समसामयिक अपेक्षाएं	9.1 संस्थान को वैश्विक डिलेवरी के योग्य बनाना। 9.2 आंतरिक गुणवत्ता निर्धारण व मूल्याकंन तंत्र की स्थापना करना। 9.3 शिक्षा के राष्ट्रीय व सामुदायिक लक्ष्यों व नीतियों की अनुपालना व समन्वयकारी कार्यक्रमों का निर्धारण करना। 9.4 विभिन्न शैक्षिक सेवाओं की उपभोक्ताओं के आपसी संबंधों व अपेक्षाओं को संस्थानिक विकास की दृष्टि से देखना। 9.5 गुणवत्ता के उभरते नये क्षेत्रों व मानकों के प्रति जागरूकता रखना।

संदर्भ

जुरान, जे.एम. एवं फ्रेन्क एम. (1995) *''क्वॉलिटी प्लानिंग एण्ड एनालाइसिस डाटा''* मैंकग्रा-हील पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली।

मुखोपाध्याय, मर्मर (2002), *''शिक्षा में सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन,''* रा.शै.यो.प्रा. संस्थान, नई दिल्ली।

आंतरिक गुणवत्ता सुनिश्चितीकरण गतिविधि अभ्यास पुस्तिका-I (2006), राष्ट्रीय मूल्याकंन एवं प्रत्यायन परिषद, बैंगलूरू (2006)

केतूनेन, जुहा (2007) *''इन्टिग्रेशन ऑफ स्ट्रेटेजिक मैनेजमेन्ट एण्ड क्वालिटी एशोरेंस''* तुरकू विश्वविद्यालय फिनलैण्ड।

''नैशनल कान्फ्रेंस ऑन डवलपमेन्ट ऑफ हॉयर एजूकेशन फॉर एक्सपैन्सन, इनक्लूजन एण्ड एक्सीलैन्सी'' (2008) यू.जी.सी. नई दिल्ली

होप एन्ड्रे (2007) *'क्वालिटी एश्योरेन्स'* यू.के. ओपन यूनिवर्सिटी, यू.के.।

''स्टैण्डर्ड एण्ड गाइडलाईन्स फॉर क्वालिटी एश्योरेन्स इन दा यूरोपियन हॉयर एजूकेशन'' (2005) यूरोपियन एसोसियेशन फॉर क्वालिटी एश्योरेन्स इन हॉयर एजूकेशन एक्सीलैन्सी।

''एकेडमिक क्वालिटी हैण्डबुक सैक्शन-2'' (2005), यूनिवर्सिटी ऑफ अबेरडीन।

टॉवेन्स, फ्रेंकोइस (2003) *''क्वालिटी एश्योरेन्सः ए रेफ्रेंस सिस्टम फॉर इनडिकेटर्स एण्ड इवेलवेशन प्रोसिजर''*, यूरोपियन यूनिवर्सिटी एसोसियेशन।

खावाज, एल. एलाइन (1998) *''क्वालिटी एश्योरेन्स इन हॉयर एजूकेशन : रिसेन्ट प्रोग्रेस, चैलेन्जस एडेड''* यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, लॉस एन्जेलस।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

बिहार की स्कूली शिक्षा का वित्तीय प्रबंधन

कुमार संजीव* और अमित कुमार**

सारांश

वित्तीय संसाधनों की भारी कमी के बावजूद बिहार का शिक्षा विकास पटरी पर है। राज्य के मात्र 47 प्रतिशत लोग साक्षर हैं। वर्तमान मूल्य पर प्रति व्यक्ति आय भी सभी राज्यों से कम 9765 रू. है और दशकीय सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर मात्र 5.1 प्रतिशत। राज्य में शिक्षा पर किये जा रहे व्यय के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि वर्तमान समय में सरकार अपने कुल बजट का 16.9 प्रतिशत हिस्सा शिक्षा पर खर्च करती है और कुल राजस्व का 67 प्रतिशत प्राथमिक एवं 17 प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा पर। साथ ही स्कूली शिक्षा के लिए आवंटित राशि का भी वह शत-प्रतिशत व्यय कर रही है। समान स्कूल प्रणाली आयोग की रिपोर्ट को लागू करने के लिए सरकार को पैसे की कमी भले ही महसूस हो रही है लेकिन 1980 के दशक से स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में चली आ रही वित्त रहित शिक्षा नीति को समाप्त कर सरकार ने बिहार की स्कूल शिक्षा के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया है।

प्राचीन काल में देश-दुनिया में ''एजुकेशनल हब'' के रूप में विख्यात बिहार का एक अपना गौरवशाली इतिहास रहा है। नालन्दा एवं विक्रमशीला विश्वविद्यालय इसके पुख्ता प्रमाण हैं। समय के साथ-साथ स्वर्णिम अतीत वाले बिहार के वर्तमान में काफी बदलाव आया है। लेकिन शैक्षिक बदलाव आशा के अनुरूप नहीं हो सका है। आजादी के 62 वर्षों बाद भी राज्य की साक्षरता दर देश के सभी राज्यों से कम 47 प्रतिशत है।

* व्याख्याता, स्नातकोत्तर शिक्षा विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना-800 004
ई-मेल : kr.sanjeev2008@gmail.com
**व्याख्याता, शिक्षा विभाग, एल.एन.मिश्रा कॉलेज ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट, मुजफ्फरपुर (बिहार)
ई-मेल : isecamit@yahoo.com

प्राथमिक स्कूलों की संख्या वर्ष 1946-47 में 20260 से बढ़कर वर्ष 1976-77 में 51244 हो गई। वर्तमान में राज्य के किसी बच्चे को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक किलोमीटर से अधिक नहीं जाना पड़ता है।

आर्थिक विकास के मामले में भी राज्य की स्थिति कमोवेश शिक्षा जैसी ही है। राज्य के 43 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करते हैं। देश की प्रति व्यक्ति आय (2007-08 के दर पर) 33,299 रुपये की तुलना में राज्य के लोगों का प्रति व्यक्ति आय सबसे कम (9765 रुपये) है। यहाँ तक कि वर्ष 2000-01 से 2007-08 तक सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर 5.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष रहा है जो राष्ट्रीय औसत 7.1 प्रतिशत से कम है।

स्वतंत्रता के पश्चात् बिहार के शैक्षिक व्यय मद में वृद्धि जरूर हुई है लेकिन सकल घरेलू उत्पाद की प्रतिशतता के मामले में यह काफी पीछे रहा है। 1960-61 से 1975-76 तक राज्य में सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 2.4 प्रतिशत हिस्सा ही शिक्षा पर व्यय किया जाता रहा है जबकि इसी अवधि के दौरान केरल में यह 4.2 प्रतिशत से 6.5 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 2.3 प्रतिशत से 4.8 प्रतिशत और तमिलनाडू में 2.8 प्रतिशत से बढ़कर 4.2 प्रतिशत हो गई थी। यानी बिहार में शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत खर्च में वृद्धि केरल, मध्य प्रदेश एवं तमिलनाडू की तुलना में काफी कम रही जिसके परिणामस्वरूप उक्त अवधि में बिहार का शैक्षिक विकास इन राज्यों की तुलना में काफी कम हुआ।

वित्तीय वर्ष 1975-76 में समूचे देश के लिए योजनागत व्यय की आधी रकम प्रारंभिक शिक्षा पर खर्च कर दी गई। इस दौरान बिहार ने प्राथमिक शिक्षा पर नागालैंड के बाद सबसे अधिक 59.4 प्रतिशत खर्च किया। लेकिन माध्यमिक शिक्षा पर खर्च के मामले में बिहार पिछड़ गया। राष्ट्रीय औसत 33 प्रतिशत की तुलना में यहाँ माध्यमिक शिक्षा पर सिर्फ 19.3 प्रतिशत राशि खर्च की गई। वर्ष 1977-78 में भी अखिल भारतीय प्रति व्यक्ति मौद्रिक आवंटन 36.5 रुपये की तुलना में बिहार को प्रति व्यक्ति मात्र 20 रुपये आवंटित किया गया।

पंचवर्षीय योजनाओं में बिहार की शिक्षा पर व्यय : पंचवर्षीय योजनाओं के शुभारंभ से ही बिहार की शिक्षा पर होने वाले व्यय राशि की वृद्धि के संकेत मिलते हैं।

तालिका-1

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बिहार की शिक्षा पर होने वाले व्यय का विवरण

(लाख रु. में)

शिक्षा का स्तर	पहली योजना	दूसरी योजना	तीसरी योजना	चौथी योजना	पांचवीं योजना	छठी योजना	सातवीं योजना	आठवीं योजना	दसवीं योजना
प्राथमिक शिक्षा	220.00	1135.46	975.49	2529.53	7813.00	10168.80	18130.00	86100.00	86500.00
माध्यमिक शिक्षा	100.00	509.81	333.91	388.70	1285.00	1184.21	6165.00	7000.00	2800.00
विश्वविद्यालयी शिक्षा	60.00	250.00	215.59	595.06	1789.00	1604.99	2080.00	3500.00	2600.00
विशिष्ट शिक्षा	15.00	50.00	—	10.00	106.00	120.00	240.00	—	—
खेल एवं युवा कल्याण	45.00	61.15	—	—	110.00	160.00	959.00	2210.00	2000.00
अन्य	—	—	156.41	272.40	150.00	—	—	—	—
सामान्य शिक्षा	440.00	2008.81	1681.40	3795.69	11253.00	14300.00	32100.00	78000.00	91900.00
तकनीकी शिक्षा	80.00	199.95	345.96	352.00	407.00	950.00	2032.00	2632.50	12346.00
कला एवं संस्कृति	50.00	321.18	—	—	45.00	150.00	400.00	400.00	1000.00
कुल	570.00	2529.94	2027.36	4147.69	11705.00	15400.00	34532.00	81032.50	105246.00

तालिका–1 से स्पष्ट है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना से बिहार को शिक्षा के मद में 570 लाख रुपये आवंटित किया गया। यह राशि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में बढ़ाकर 2529 रुपये, तृतीय पंचवर्षीय योजना में 2027 लाख रु., चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में 4148 लाख रु. पंचम पंचवर्षीय योजना में 11705.96 रु., षष्ठम पंचवर्षीय योजना में 15400 लाख रुपये कर दी गई।

योजना तथा योजनेतर व्यय : बजट व्यवस्था के अनुसार कुल राजकीय व्यय दो भागों में विभक्त होता है– योजना (प्लान) और गैर–योजना (नॉन–प्लॉन)। योजना को विकास का भी व्यय माना जाता है। पूर्ण योजनावधि समाप्त होने पर प्रायः सारा योजना व्यय योजनेतर–व्यय में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इससे योजनेतर व्यय में वृद्धि एवं योजना व्यय की राशि में अपेक्षाकृत कमी नजर आना स्वाभाविक है।

वित्तीय वर्ष 2002–03 में योजना मद में शिक्षा प्रक्षेत्र पर 137 करोड़ रुपये व्यय किये जाने का लक्ष्य रख गया था जिसे बढ़ाकर वर्ष 2008–09 में 1361.72 करोड़ एवं 1009–10 में 1474.93 करोड़ रुपये कर दिया गया। साथ ही 2002–03 में तयशुदा योजनेतर व्यय 2875 करोड़ को बढ़ाकर 2009–10 में 6490 करोड़ रुपये कर दिया गया। यानी पिछले आठ वर्षों में बिहार के शिक्षा प्रक्षेत्र में की गई योजनागत एवं योजनेतर व्यय में हुई वृद्धि इस बात का द्योतक है कि बिहार की सरकारें शिक्षा खासकर स्कूली शिक्षा पर ध्यान देती रही हैं। लेकिन वित्तीय वर्ष 2006–07 से स्कूली शिक्षा पर आवंटित योजना एवं योजनेतर व्यय को आवंटित राशि का शत–प्रतिशत खर्च किये जाने की परंपरा–सी विकसित हो गई। लिहाज इसका असर जमीनी स्तर पर भी दिख रहा है। बच्चे साक्षर होने की बजाए शिक्षित होने लगे हैं। यह भी विकास का द्योतक है।

बजट संरचना और शिक्षा पर व्यय : कोई भी राज्य सरकार अपने राज्य की शिक्षा के प्रसार एवं गुणवत्ता के सुधार के लिए कितना कृतसंकल्प है यह उस राज्य की बजट संरचना और उसके अनुपात में शिक्षा पर किये जा रहे व्यय की प्रतिशतता से स्पष्ट झलकता है। इस पैमाने पर बिहार अपने पड़ोसी राज्यों की तुलना में काफी आगे है। वर्ष 2003–04 में बिहार अपनी कुल बजट संरचना का 14.3 प्रतिशत हिस्सा शिक्षा पर खर्च कर रही थी। वहीं वर्ष 2007–08 में यह बढ़कर 16.9 प्रतिशत हो गया। वहीं

वर्ष 2007–08 में शिक्षा पर बजटीय आवंटन की प्रतिशतता पड़ोसी राज्य झारखंड में 15.9 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 14.0 प्रतिशत एवं पश्चित बंगाल में 14.7 प्रतिशत रही जबकि केंद्र सरकार वर्ष 2007–08 में अपने बजट संरचना का मात्र 13.9 प्रतिशत हिस्सा ही शिक्षा के मद में खर्च कर पाई थी।

विभिन्न शैक्षिक स्तरों पर व्यय : शिक्षा में वित्तीय विविक्षा को आंकने का एक और रुचिकर पहलू है–शिक्षा का स्तर। शैक्षिक प्रक्रिया मुख्यत: दो स्तरों पर कार्यान्वित होती है– (i) स्कूली शिक्षा (प्राथमिक एवं माध्यमिक) एवं (ii) उच्चतर शिक्षा।

वर्ष 2007–08 में शिक्षा पर हुए राज्य सरकार के कुल राजस्व का 67 प्रतिशत भाग प्राथमिक शिक्षा पर, 17 प्रतिशत भाग माध्यमिक शिक्षा पर और 14 प्रतिशत भाग उच्चतर शिक्षा पर खर्च किया गया। यह दर्शाता है कि राज्य सरकार प्राथमिक शिक्षा को भरपूर प्राथमिकता दे रही है।

तालिका–2

स्कूली शिक्षा (सभी आँकड़े प्रशित में)

वित्तीय वर्ष	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्चतर शिक्षा	अन्य (वयस्क शिक्षा आदि)
2005–06	64	16	18	01
2006–07	63	20	16	01
2007–08	67	17	14	02

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण (2008–09), बिहार सरकार

तालिका–2 से पता चलता है कि स्कूली शिक्षा पर व्यय हमेशा बढ़ता जा रहा है खासकर प्राथमिक शिक्षा पर। प्राथमिक शिक्षा व्यय, माध्यमिक शिक्षा पर व्यय से ज्यादा हो रहा है। इसका कारण है कि प्राथमिक शिक्षा राज्य सरकार का संवैधानिक दायित्व है। वहीं माध्यमिक शिक्षा पर वर्ष 2005–06 में 16 प्रतिशत, 2006–07 में 20 प्रतिशत एवं वर्ष 2007–08 में 14 प्रतिशत व्यय था।

आवंटित राशि का उपयुक्त प्रयोग : वित्तीय प्रबंधन का एक आवश्यक पहलू है आवंटित राशि का पूरा-पूरा प्रयोग किया जाना। फिलहाल बिहार के मामले में यह उपयुक्त बैठता है। राज्य सरकार ने शिक्षा में अपने योजना और गैर-योजना दोनों प्रकार के व्यय बढ़ाये हैं (तालिका-3) वर्ष 2005-06 के शिक्षा व्यय में वृद्धि बारहवें वित्त आयोग की अनुसंशायों के अनुरूप हो रही है।

तालिका-3

शिक्षा पर ब्यय

(करोड़ रु.)

	गैर-योजना			**योजना**		
वर्ष	**12वें वित्त आयोग का लक्ष्य**	**व्यय**	**प्रतिशत**	**बजट**	**व्यय**	**प्रतिशत**
2005-06	3822.65	3776.57	99	438.77	435.48	99
2006-07	4183.58	4189.71	100	594.00	587.74	99
2007-08	4581.02	—	100	300.44	300.44	100

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण (2008-09), बिहार सरकार

तालिका-3 से स्पष्ट है कि वित्तीय वर्ष 2005-06, 2006-07 और 2007-08 तक लगातार आवंटित राशि का शत-प्रतिशत हिस्सा खर्च होता रहा है वह भी बजट और लक्ष्य दोनों के लिहाज से। इससे स्पष्ट है कि राज्य सरकार आवंटित राशि का उपयोग अधोसंरचना, शिक्षण-अधिगम सामग्रियों एवं अन्य मदों में करती है।

सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जी.एस.डी.पी.) और शिक्षा पर व्यय : सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जी.एस.डी.पी.) एक ऐसा महत्वपूर्ण मद है जिसका शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय से गहरा संबंध है। वर्ष 2001-02 में बिहार का सकल राज्य घरेलू उत्पाद की राशि 57804 करोड़ रुपये आंकी गई है (तालिका-4)। सकल राज्य घरेलू उत्पाद का शिक्षा पर व्यय का प्रतिशतता का यदि आकलन किया जाए तो वर्ष 2001-02 में यह 4.39 प्रतिशत, 2002-03 में 3.69 प्रतिशत, 2003-04 में 4.39 प्रतिशत, 2004-05 में 3. 79 प्रतिशत रही जो 2005-06 में यह बढ़कर 5.99 प्रतिशत हो गई। पिछले छः वर्षों

में प्रतिशतता दर लगातार घटती बढ़ती रही है। लेकिन अब इस प्रतिशतता को लगातार बढ़ते क्रम में रखना होगा क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद राज्य में लोगों के रहन-सहन के स्तर को दर्शाता है।

तालिका-4

वित्तीय वर्ष	जी.एस.डी.पी	शिक्षा पर व्यय	प्रतिशतता
2001-02	57804	2537.26	4.39
2002-03	65117	2403.95	3.69
2003-04	66961	2940.70	4.39
2004-05	73791	2794.10	3.79
2005-06	79682	4776.24	5.99

स्रोत : सांख्यिकीय आँकड़े, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

शैक्षिक व्यय के आंकलन का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष हे कि शिक्षा पर निवल राज्य घरेलू उत्पाद (एन.एस.डी.पी.) का कितना प्रतिशत खर्च होता है। कोठारी आयोग (1964-66) ने अनुशंसा की थी कि अगर देश की शैक्षिक तरक्की करनी है तो निवल घरेलू उत्पादन (एन.डी.पी.) का 6 फीसदी हिस्सा शिक्षा पर खर्च करना होगा। लेकिन बिहार अब भी इससे काफी पीछे है।

शिक्षा पर प्रति व्यक्ति व्यय : शिक्षा पर किया जा रहा प्रतिव्यक्ति व्यय इस बात का सूचक होता है कि सरकार राज्य के बच्चों की शिक्षा के लिए कितना चितिंत है।

तालिका-5

शिक्षा पर प्रतिव्यक्ति व्यय का वर्षवार विवरण

सामान्य शिक्षा पर व्यय	2003-04	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09
कुल व्यय	2778	3092	4337	5204	5493	7206
प्रतिव्यक्ति व्यय	320	348	467	548	565	726

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण (2008-09), बिहार सरकार

तालिका-5 से स्पष्ट है कि बिहार में सामान्य शिक्षा (प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा) पर प्रतिव्यक्ति व्यय वर्ष 2003-04 में 320 रुपये से बढ़कर 2008-09 के अंत में 726 रुपये हो गई।

सर्व शिक्षा अभियान : प्राथमिक शिक्षा के ढ़ांचे को दुरुस्त और संस्थाबद्ध किये जाने की जगह सर्व शिक्षा अभियान एवं एजुकेशन गारंटी स्कीम जैसी योजनाओं ने ले ली है। लेकिन बिहार में सर्व शिक्षा अभियान वर्ष 2001 में शुरु हो सकी थी। पहले तो वर्ष 2007 तक राज्य के 6-14 वर्ष तक के बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था जिसे बाद में बढ़ाकर 2010 कर दिया गया।

तालिका-6 से स्पष्ट है कि सर्व शिक्षा अभियान के तहत् 2007-08 में बिहार में कोष के उपयोग का स्तर पिछले साल की ही तरह काफी ऊँचा था। इसका एक करण यह है कि कार्यान्वयनकारी प्राधिकरण (बिहार शिक्षा परियोजना) कई वर्षों से कामकाजी संस्था के रूप में अस्तित्वमान है और इस कार्यक्रम को तैयारशुदा संस्थागत ढ़ांचा उपलब्ध करा रहा हे। घटकवार विवरण से पता चलता है कि सर्व शिक्षा अभियान के सामान्य घटक के लिए कोष का उपयोग 88 प्रतिशत था। हालांकि, लिंग-विशेष आधारित घटकों के लिए कोष का उपयोग 264 प्रतिशत था– अर्थात् राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम (एनपीईजीईएल) के लिए विमुक्त कोष के दुगुने से भी अधिक और कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के लिए 71 प्रतिशत। तथापि, कुल योजना आवंटन में लिंग-विशेष आधारित घटक का प्रतिशत बहुत कम होता है। इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि विमुक्त कोषों के काफी बड़े हिस्से (88 प्रतिशत) का उपयोग कर लिया गया, लेकिन खुद कोष विमुक्त करने की स्थिति संतोषजनक नहीं थी। वर्ष 2007-08 में अनुमोदित कोष का मात्र 58 प्रतिशत ही विमुक्त किया गया।

वैसे आरंभ में इस योजना में 75 प्रतिशत केन्द्र सरकार और 25 प्रतिशत राज्य सरकार का योगदान था। वहीं वर्ष 2007-08 में यह अनुपात 60:40 और 2008-09 में 65:35 हो गया। वर्ष 2003-04 में राज्य सरकार जहाँ मात्र 194 करोड़ रुपये केन्द्र सरकार से ले सकी थी वहीं वर्ष 2007-08 में बेहतर प्रबंधन के कारण 1326 करोड़ रुपये लेने में बिहार सफल रहा। 2008-09 में राजय सरकार ने 885 करोड़ राज्यांश का प्रावधान कर रखा था।

तालिका-6

सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत वित्तीय प्रदर्शन

(करोड़ रु.)

वर्ष	अनुमोदित वार्षिक कार्य योजना	कोष विमुक्तियां			कुल व्यय	उपयोग (प्रतिशत)	
		भारत सरकार	बिहार सरकार	योग		विमुक्त कोष का	अनुमोदित कोष का
सर्व शिक्षा अभियान							
2001-02	67.05	28.50	5.00	33.50	8.97	26.77	13.37
2002-03	351.35	79.15	28.50	107.65	12.92	12.00	3.68
2003-04	764.77	194.99	64.83	259.32	246.89	95.21	32.28
2004-05	835.85	302.00	80.00	382.00	376.50	98.56	45.05
2005-06	842.74	302.00	121.33	423.33	444.30	104.96	52.72
2006-07*	2340.15	1026.29	538.50	1564.79	1549.59	99.03	66.22
2007-08*	3161.49	1326.10	816.00	2142.10	1886.17	88.05	59.66
2009-10	—	—	803.45	1500.00 (जनवरी 2009 तक)	—	—	—
राष्ट्रीय बालिका प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम (एनपीईजीईएल)							
2004-05	49.00	18.38	0.00	18.38	12.76	69.42	26.03
2005-06	57.33	17.71	11.80	29.51	25.78	87.37	44.97
2006-07*	73.93	55.44	9.23	64.68	33.93	52.47	45.90
2007-08*	48.06	0.00	9.23	9.23	24.44	264.70	50.85
कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय							
2005-06	17.70	11.15	4.46	15.62	2.13	13.66	12.05
2006-07*	138.38	16.84	5.61	22.45	15.49	69.02	11.20
2007-08*	129.74	51.38	6.62	58.00	41.01	70.71	31.61

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण (2008-09), बिहार सरकार

लेकिन बिहार में चल रहे सर्व शिक्षा अभियान की कड़वी सच्चाई है कि यह वर्ष 2001–02 में शुरू हुआ और पहले ही साल बिहार इसमें पिछड़ गया। पहले साल 670 करोड़ के बजट में केन्द्र सरकार ने 285 करोड़ और राज्य सरकार ने 50 करोड़ की राशि जारी की लेकिन कुल आवंटन का 15.13 प्रतिशत राशि ही खर्च हो सकी। अगले साल 3500 करोड़ से अधिक का बजट बना और केन्द्र सरकार ने 709 करोड़ 14 लाख रुपये और राज्य सरकार ने 284 करोड़ रुपये की राशि जारी की। इस आवंटन में मात्र 129 करोड़ यानि 12 प्रतिशत खर्च हो पाई। शुरुआती आँकड़ों से साफ है कि शुरु के दो वर्षों में सर्व शिक्षा अभियान बिहार में ठप रहा।

पिछले डेढ़ दशक के दौरान स्कूली शिक्षा में आई गिरावट के लिए बिहार सरकार ने भी पिछली सरकार के वित्तीय प्रबंधन अक्षमता को जिम्मेवार ठहराया है। वर्ष 2006–07 में राज्य की वित्तीय स्थिति एवं विकास पर जारी श्वेत पत्र में बिहार सरकार ने स्वीकार किया कि जिला प्राथमिक शिक्षा योजना और सर्व शिक्षा अभियान के मामले में, राज्य सरकार पहली किस्त के रूप में मिली राशि का उपयोग करने में असफल रही है और पिछले वर्षों में हर वर्ष राज्य सरकार इस मद में दूसरी किस्त पाने में असफल रही (तालिका–7)। राज्य ने इतने महत्वपूर्ण क्षेत्र में 505 करोड़ रुपये गँवा दिये।

समान स्कूल प्रणाली का वित्तीय प्रबंधन : बिहार स्कूली शिक्षा को पुर्नजीवित करने के लिए राज्य सरकार ने 8 अगस्त को एक अधिसूचना (पत्रांक–8/व 3–105/2006, 1335) के जरिये समान स्कूल प्रणाली आयोग का गठन किया। इसका उद्देश्य पूरे राज्य में समुदाय आधारित एक ऐसे स्कूल तंत्र का विकास करना है, जिसमें अमीर और गरीब के बच्चे साथ–साथ पढ़े–लिखें और खेलें–कूदें। उसके अंतर्गत राज्य के सभी स्कूलों में कम–से–कम इतने संसाधन मुहैया करा देने की वकालत की गई थी ताकि तुलनात्मक रूप से सभी बच्चों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करायी जा सके। यह आम अभिभावकों की जरूरतों पर खरा उतरे ताकि उन्हें जमीन–जायदाद गिरवी रखकर अपने बच्चों को समान स्कूल प्रणाली के दायरे से बाहर चले रहे महँगे (फाइव स्टार) स्कूलों में भेजने को मजबूर न होना पड़े। ग्यारह महीने के कार्यकाल को पूरा कर आयोग ने 8 जून 2007 को बिहार सरकार को अपना प्रतिवेदन सौंप दिया। प्रतिवेदन में कहा गया कि समान स्कूल प्रणाली को जमीन पर उतारने के लिए राज्य सरकार को आगामी नौ वर्षों (2007–17) में औसतन 17 हजार, 54 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष खर्च करने होंगे। लेकिन

तालिका-7

डीपीईपी और एसएसए मद में उपलब्ध और उपयोग लायी गयी राशि की स्थिति

(करोड़ रु.)

वर्ष	आवंटन वर्ष	उस वर्ष विमुक्त राशि	संसाधनों की हानि		कुल उपलब्ध राशि	खर्च राशि	आवंटन का %
			राशि	आवंटन का %			
1997-98	18.67	32.58	-13.91	...	32.58	2.48	7.61
1998-99	64.13	24.31	39.82	40.23	54.42	25.8	47.41
1999-00	95.95	55	40.95	38.39	83.61	36.84	44.06
2000-01	88.33	35.05	53.28	39.70	81.82	35.07	42.86
2001-02	119.62	63	56.62	50.76	109.76	60.72	55.32
2002-03	132.49	64	68.49	43.52	113.04	57.66	51.01
2003-04	170.98	93.31	77.67	36.17	148.69	61.85	41.60
2004-05	177.57	86.83	90.74	45.80	173.68	81.32	46.82
2005-06	156.48	65.11	91.37	54.49	157.47	85.27	54.15
कुल	**1024.22**	**519.19**	**505.03**	**43.64**		**447.01**	

स्रोत : श्वेत पत्र (2006), बिहार सरकार

समान स्कूल प्रणाली की अनुशंसा लागू करना आसान नहीं है। इसके लिए भारी पूंजी निवेश की जरूरत पड़ेगी। अगर आंतरिक और बाह्य स्रोतों से इसकी भरपाई करने की कोशिशें की जाए, तो न केवल बिहार में कॉमन स्कूल प्रणाली लागू होगी, बल्कि इससे राज्य की शिक्षा का अर्थशास्त्र बदल जायेगा। आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के लिए 2007-08 से वर्ष 2012-13 के बीच की पंचवर्षीय अवधि में राज्य में 26 हजार अतिरिक्त प्राथमिक विद्यालयों तथा साढ़े 15 हजार अतिरिक्त माध्यमिक विद्यालयों की आवश्यकता होगी। इसके अलावा इस अवधि में 21.7 हजार माध्यमिक विद्यालय भी खोलने होंगे। साथ ही 2016-17 तक 11.56 लाख शिक्षक भी बहाल करने होंगे। इसके अलावा शिक्षण प्रशिक्षण संस्थानों को पुनर्जीवित

भी करना होगा। इसके लिए भारी पूंजी निवेश की जरूरत पड़ेगी। आयोग के मुताबिक समान स्कूल प्रणाली को जमीन पर उतारने के लिए आगामी नौ सालों के दौरान राज्य सरकार पर औसतन 17 हजार, 54 करोड़ रुपये का बोझ प्रतिवर्ष बढ़ेगा। अगर क्रियान्वयन के प्रथम वर्ष 2008-09 में स्कूली शिक्षा व्यय की बात की जाये, तो कुल प्राक्कलित व्यय 17254.9 करोड़ रुपये आता है, जिसमें स्कूल की स्थापना का आकलित अतिरिक्त व्यय 10 हजार 699 करोड़ भी शामिल है।

वैसे भी बिहार सरकार वर्तमान समय में स्कूली शिक्षा मद में कुल बजट आवंटन का केवल 16.9 फीसदी हिस्सा ही खर्च करती है। नये प्रस्ताव के मुताबिक इसे बढ़ा कर 20 फीसदी करना होगा, तब जाकर वित्तीय वर्ष 2005-09 में अतिरिक्त संसाधनों के एकत्रीकरण की आवश्यकता घटकर 8,923 करोड़ रह जायेगी। आयोग ने एक अन्य विकल्प भी प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार प्राथमिक, मध्य एवं उच्च विद्यालयों की कुरसी क्षेत्र में क्रमशः 20.8 प्रतिशत, 16 प्रतिशत एवं 3.0 प्रतिशत कमी करने तथा अनावर्ती व्यय नौ हजार करोड़ रुपये होगा। अगर कुल बजट आवंटन में स्कूली शिक्षा व्यय के हिस्से को बढ़ाकर 20 प्रतिशत कर दिया जाये, तो इस विकल्प के अंतर्गत अतिरिक्त व्यय 7,223 करोड़ रुपये रह जायेगा। आयोग ने आर्थिक संसाधनों के एकत्रीकरण को अनिवार्य बताया है। अब सवाल है कि स्कूली शिक्षा की इस गहरी खाई को पाटेने के लिए पैसा आयेगा कहाँ से? इसके लिए राज्य सरकार को अपने आंतरिक स्रोतों से पैसे इकट्ठे करने पड़ेंगे। साथ ही इसके लिए केंद्र सरकार के अलावा अन्य बाह्य स्रोतों पर भी निर्भर रहना पड़ेगा। सरकार को समान स्कूली प्रणाली की अनुशंसा प्राप्त होने से पहले 'कोब्से' ने अपनी 'पटना घोषणा' के जरिये स्वीकार किया था कि यदि बिहार सरकार को समान स्कूल प्रणाली की परिकल्पना को साकार करना है, तो शिक्षा के मद में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी) का छह फीसदी हिस्सा खर्च करना होगा। अगर शिक्षा के लिए सकल राष्ट्रीय का छह फीसदी समर्पित करने की कोठारी आयोग की अनुशंसा का अनुपालन होता है और यदि इसका बिहार की जनसंख्या के संगत अंश बिहार को केन्द्र तथा राज्य, दोनों सरकारों के प्रयास से उपलब्ध करा दिया जाता है, तो समान स्कूल प्रणाली की स्थापना के लिए मात्र 1,748 करोड़ रुपये अतिरिक्त एकत्र करने की जरूरत रह जायेगी।

वर्तमान समय में सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी.एन.पी.) लगभग 42 लाख करोड़ रुपये है। इन राशि का 6 प्रतिशत 2.52 लाख करोड़ रु. होता है। यदि स्कूली शिक्षा पर किये

जा रहे 75 प्रतिशत के वर्तमान ट्रेंड के हिसाब से ही यह राशि अलग कर दी जाए तो स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्र को 1.89 लाख करोड़ रुपये उपलब्ध होंगे। इसी तरह बिहार की जनसंख्या के संगत अंश 8.3 प्रतिशत के हिसाब से बिहार की स्कूली शिक्षा के लिए लगभग 15,700 करोड़ रुपये उपलब्ध होंगे (खगेन्द्र, 2008)।

भूमंडलीकरण के चलते 15 वर्षों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद के प्रतिशत के रूप में शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च बढ़ने के बजाय लगातार घटता चला गया। वर्ष 1990–91 में यह प्रतिशतता 4.34 थीं, वहीं 1992–93 में 4.01 प्रतिशत, 1994–95 में 3.85 प्रतिशत और वर्ष 2005–06 में यह घटकर 3.5 प्रतिशत पर चली आयी। इसलिए केन्द्र की बजटीय मदद छह फीसदी की आस कहीं दूर–दूर तक नहीं दिख रही। अतिरिक्त संसाधनों के एकत्रीकरण के लिए आयोग ने कई विकल्प सुझाये हैं, जिनमें पहला विकल्प है सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत तमाम सहायता उपलब्ध कराने के लिए केन्द्र सरकार से आग्रह करने की पहल, 2000 से चल रहे सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत केन्द्र और राज्य की सहभागिता 75:25 निर्धारित की गई थी। यानी कुल खर्च का 75 फीसदी हिस्सा केन्द्र को मुहैया कराना था और शेष 25 फीसदी हिस्सा राज्य सरकार को, लेकिन 2007 से खर्च का यह अनुपात बढ़कर 50–50 हो गया। अब सवाल यह है कि केन्द्र सरकार के पास गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा सुविधा मुहैया कराने के लिए वाकई संसाधनों की कमी है? यदि कमी होती तो कारपोरेट घरानों का कर्ज माफ करने, 2010 में राष्ट्रमंडल खेल आयोजित करने एवं विशेष आर्थिक जोन (सेज) के लिए सब्सिडी देने के लिए हर वर्ष दसियों हजार करोड़ रुपयों की विपुल धन राशि कहाँ से आती है? सवाल संसाधनों की कमी का है या फिर राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राथमिकताओं को बदलने का है, इस पर भी गंभीर चिंतन आवश्यक है। अतिरिक्त संसाधनों के एकत्रीकरण के अन्य उपायों में शामिल है मानव संसाधन विकास विभाग के अलावा अन्य मंत्रालयों से सहयोग, राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं, खासकर बैंकों का सहयोग तथा केन्द्र सरकार से विशेष पैकेज की माँग। लेकिन विश्व बैंक एवं इसकी अन्य सहचर अंतर्राष्ट्रीय वित्त पोषक संस्थाओं से भी सावधान रहने की जरूरत है, जो कम देनदारी और ज्यादा लफ्फाजी के फॉर्मुले पर चल रहे हैं। इसका जीता–जागता उदाहरण है विश्व बैंक। विश्व बैंक द्वारा प्रायोजित जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीइपी) सरीखे कार्यक्रम पर किया गया खर्च, शिक्षा पर भारत सरकार द्वारा किये जानेवाले कुल खर्च का 40वां हिस्सा भर है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व बैंक, सरकार से

अधिक सक्रिय है। इसलिए प्रजातांत्रिक संस्थाओं को अपनी देख-रेख में सक्रियता से कार्यों को अंजाम दिया जाना चाहिए।

वित्तरहित स्कूलों को वित्तीय अनुदान : सरकार की नई पहल

बिहार सरकार के मानव संसाधन विभाग ने एक संकल्प (संख्या:11/वि-1-220/2007/538, पटना, दिनांक 19/05/09) के जरिये 1980 के दशक से चले आ रहे ''वित्त रहित शिक्षा नीति'' को समाप्त कर स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में एक नये युग की शुरुआत की है। नयी नीति के तहत अब राज्य के स्थापना अनुमति की प्रस्वीकृति प्राप्त सभी वित्त रहित माध्यमिक विद्यालयों एवं इंटर महाविद्यालयों (उच्च माध्यमिक विद्यालयों) को वित्तीय अनुदान मुहैया कराये जाने का प्रावधान बनाया गया है। सरकार द्वारा निर्दिष्ट मापदंड अहर्ताधारी स्थापना की अनुमति/प्रस्वीकृति प्राप्त माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालयों को लोक-निजी भागीदारी (Public-Private Partnership) के सिद्धांत पर वित्तीय सहायता दिये जाने का प्रावधान बनाया गया है। इन विद्यालयों से प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र-छात्राओं के लिए निम्नलिखित अनुदान दिये जाने का प्रावधान है:

तालिका-8

माध्यमिक विद्यालयों को प्रतिछात्र मिलने वाला वित्तीय अनुदान

श्रेणी	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी
छात्र	3500/-	3000/-	2500/-
छात्रा	3700/-	3200/-	2700/-

तालिका-9

उच्च माध्यमिक विद्यालयों को प्रतिछात्र मिलने वाला वित्तीय अनुदान

श्रेणी	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी
छात्र	4500/-	4000/-	3500/-
छात्रा	4700/-	4200/-	3700/-

स्रोत : मानव संसाधन विकास विभाग (2009), बिहार सरकार

नई नीति के मुताबिक अब वित्त रहित स्कूलों के लिए 9वीं, 10वीं एवं 11वीं, 12वीं कक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्र-छात्राओं की वास्तविक संख्या के आधार पर तालिका-8 एवं 9 में वर्णित प्रावधानों के मुताबिक ही वित्तीय अनुदान तय किया गया है लेकिन शर्तिया। शर्त यह रखा गया है कि स्कूल प्रबंधन शिक्षा एवं शिक्षकेतर कर्मचारियों के मानदेय का भुगतान बैंक खाते के माध्यम से 'एकाउंट पेई चेक' के जरिये करें। इसके लिए सरकार से प्राप्त वित्तीय अनुदान की राशि की आंतरिक लेखा अंकेक्षण निबंधित चार्टर्ड एकाउंट से कराकर उपयोगिता प्रमाण-पत्र को हर वर्ष उपलब्ध कराना आवश्यक शर्त बना दिया है ताकि प्रबंधन वित्तीय अनियमितता नहीं कर सके। वित्तरहित शिक्षा नीति समापन बिहार के लिए शुभ संकेत माना जा रहा है।

जरूरत पूर्ववर्ती स्कूली शिक्षा योजनाओं के हश्र से सीख लेने की

स्कूली शिक्षा के उन्नयन के लिए चलाई जाने वाली नवीन योजनाओं का प्रायोगिक क्रियान्वयन किया जाना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी है क्रियान्वित योजनाओं के मूल्यांकन एवं उनसे प्रतिपुष्टि (फीडबैक) लेने का। अन्यथा योजनाएं जमीन पर उतरती ही नहीं हैं। इसका जीता जागता उदाहरण है नब्बे के दशक में आरंभ की गई ''चरवाहा विद्यालय'' योजना। यह एक उस कहावत पर आधारित विद्यालय की कल्पना थी जिसका मजमूं है : ''यदि बच्चे स्कूल न जा सकें, तो स्कूल को ही बच्चे तक जाने दो।'' (If the Children can not go to school, Let the school go to the children). 1991 में राज्य के गरीब बच्चों के लिए शुभारंभ किये गये चरवाहा विद्यालय योजना के तहत राज्य भर में 150 चरवाहा विद्यालय खोले गये थे। 1.14 एकड़ कृषि योग्य भूमि पर बनाये गये इस विद्यालय में प्राथमिक शिक्षा के अलावा मत्स्य पालन, पशुपालन, कृषि, ग्रामीण विकास, वानिकी, आदि की शिक्षा दी जाने लगी। बच्चों को स्कूल ड्रेस, किताब, स्लेट, स्पोर्ट्स कीट एवं मध्याह्न भोजन भी मुफ्त मिलती थी।

वर्ष 1993-94 में योजना आयोग ने चरवाहा विद्यालय के मद में बिहार राज्य को 2 करोड़ आवंटित भी कर दिये लेकिन क्रियान्वयन रणनीति की गड़बड़ी एवं प्रतिपुष्टि (फीड बैक) कार्य प्रणाली के अभाव में यह विद्यालयी योजना असमय ही दम तोड़ दिया।

ऐसे में नवीन स्कूली शिक्षा योजनाओं की शुरुआत से पहले जरूरी है पूर्ववर्ती स्कूली योजनाओं के हश्र से सीख लेने का ताकि नवीन योजनाएं जमीन पर उतारी जा सकें।

संदर्भ

आत्मानन्द (1988), फाइनासिंग ऑफ एजुकेशन इन इंडिया : ए केस स्टडी ऑफ बिहार, जानकी प्रकाशन, पटना

आर्थिक सर्वेक्षण (2007–08), बिहार सरकार

आर्थिक सर्वेक्षण (2008–09), बिहार सरकार

कुमार संजीव (2007), बदलेगा बिहार की शिक्षा का अर्थशास्त्र, प्रभात खबर, सितम्बर 8, पृ.7

खगेन्द्र कुमार व कुमार संजीव (2007), समान स्कूल प्रणाली की संभावना बढ़ी, हिन्दुस्तान, जून 7, पृ.9

खगेन्द्र कुमार (2008): कॉमन स्कूल सिस्टम : एक्जामिनिंग द फर्स्ट इनिसिएटिव इन इंडिया प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

तिलक, जांघ्याल्या (2006), शिक्षा के लिए 6 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद का आवंटन, परिप्रेक्ष्य, वर्ष–13, अंक–1, पृ. 1–20

बजट (2008–09), उपमुख्यमंत्री का बजट भाषण, बिहार सरकार

बजट (2009–10), उपमुख्यमंत्री का बजट भाषण, बिहार सरकार

बंधु वि. (2007), मझधार में शिक्षा की नैया, आउटलुक, 9 जुलाई, पृ. 20–21

भंडारी, ल. एवं काले, सु. (2009), इंडियन स्टेट्स एट ए ग्लांस 2008–09, बिहार, पियर्सन पॉवन, नई दिल्ली, पृ. 81–89

श्वेत पत्र (2006–07): बिहार सरकार।

समान स्कूल प्रणाली आयोग की रिपोर्ट 2007), बिहार सरकार

संकल्प संख्या–11/वि–1–220/2007/538 दिनांक 19/05/2009, मानव संसाधन विकास विभाग, बिहार सरकार

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

महिला बाल श्रमिकों में बढ़ती हुई शिक्षा की भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन

अंचल गुप्ता* और विशेष गुप्ता**

सारांश

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य महिला बाल श्रमिकों की कार्यदशाओं, उनकी आय तथा शिक्षा के माध्यम से इन महिला श्रमिकों के मन में बढ़ते आत्मविश्वास एवं इनके सामाजिक जीवन में आ रहे परिवर्तनों को ज्ञात करना है। यह अध्ययन बाल श्रमिकों के लिए खोले गये बाल श्रम हितकारी केन्द्रों से जुड़ा है, इसलिए इस अध्ययन का केंद्र बिन्दु भी रहा है कि इन विभिन्न हितकारी केंद्रों में महिला बाल श्रमिकों के शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उनके जीवन में क्या-क्या सुधारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हो रहें हैं।

प्रस्तुत अध्ययन मुरादाबाद महानगर के 100 महिला बाल श्रमिकों पर केन्द्रित है। उत्तरदाताओं का चयन यादृच्छिक निदर्शन के आधार किया गया है। साक्षात्कार अनुसूची के निर्माण के पश्चात तथ्यों का संकलन किया गया है। इस अध्ययन में निरीक्षण एवं वैयक्तिक जीवन अध्ययन पद्धति का प्रयोग भी किया गया है।

तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात महिला बाल श्रमिकों का अपरिहार्य परिस्थितियों में श्रम करना, शिक्षा के प्रति रूझान के द्वारा उनमें उत्पन्न अनुशासन, स्वच्छता, खान-पान की आदतें एवं उनके व्यवसाय चयन जैसे महत्वपूर्ण बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए निष्कर्ष प्राप्त किये गए हैं।

महिला बाल श्रमिक : एक परिचय

भारत वर्ष में बाल श्रम की समस्या अति प्राचीन होने के साथ-साथ इसके अध्ययन का इतिहास भी पुराना है। परन्तु समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में महिला बाल श्रमिक विषय

*वरिष्ठ प्रवक्ता, समाजशास्त्र, गोकुलदास हिन्दू कन्या महाविद्यालय, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश
** रीडर, समाजशास्त्र, एम.एच.पी.जी. कालेज मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश

पर शोध आज भी अल्पगवेषित है। देश के अनेक विश्वविद्यालयों में आज समाजशास्त्र का विस्तारीकरण होने के बाद भी कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिनका वैज्ञानिक अध्ययन अभी भी समय की मांग है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि बालिकाएं हमारे समाज का भविष्य हैं। परन्तु जब ये बालिकाएं बाल श्रमिकों के रूप में कष्टदायक परिस्थितियों में काम करती हुई अपने बचपन को कुचल देती हैं, तो इनकी असहनीय परिस्थितियों को अध्ययन कर उन्हें दूर करने का प्रयास करना एवं गम्भीर एवं संवेदनशील सुधारात्मक सुझाव प्रस्तुत करना गवेषिका का परमदायित्व बन जाता है। वर्तमान में इसी रिक्तता की पूर्ति हेतु पुस्तकालय संसाधनों के माध्यम से इस विषय पर किये गए अध्ययनों का अवलोकन करके शोधकर्ताओं ने शोध के लिए उत्तेजना अनुभव की तथा इस ज्वलन्त समस्या को नई दिशा व नये कोण से अवलोकन करने का प्रयास किया है।

कहना न होगा कि महिला बाल श्रम भारत में एक सामाजिक बुराई के रूप में व्याप्त है। वास्तविक स्थिति यह कि आज भी कुछ घरेलू उद्योगों में महिला बाल श्रमिकों को ही वरीयता दी जाती हे। इनमें रेडीमेड वस्त्र उद्योग, माचिस उद्योग, प्लास्टिक उद्योग तथा घरों में सफाई व बर्तन साफ करने के काम प्रमुख हैं, जिनमें बालिकाओं को अधिक उपयुक्त माना जाता है।

भारत में निर्धनता, जनसंख्या की अधिकता, कुपोषण, बेरोजगारी एवं अशिक्षा जैसी समस्याएं बालपन की स्वाभाविकता एवं मौलिकता को नष्ट कर अभावों में जीवन व्यतीत करने को मजबूर कर रही हैं। अपने परिवार के अभावों को दूर करने के लिए महिला बाल श्रमिक कम मजदूरी तथा असामान्य परिस्थितियों में अधिक श्रम करते हुए युवावस्था तक आते-आते गम्भीर रोगों से ग्रसित हो जाती हैं। महिला श्रमिकों के शरीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास में इस श्रम के बाधक होने के साथ ही यह भावी पीढ़ी के भविष्य को भी अन्धकारमय बना रहा है। इस प्रकार महिला बाल श्रम एक समस्या के रूप में ही नही वरन एक सामाजिक रोग के रूप में भी यह समाज को खुले आम चुनौती दे रहा है। अत: इन परिस्थितियों में बालिका रूपी कली खिलने से पहले ही मुरझाने के लिए मजबूर हैं उपरोक्त बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए शोधकर्ताओं ने महिला बाल श्रमिकों के अध्ययन को अपना प्रमुख विषय बनाया है।

प्रत्येक शोध सोद्देश्य होता है। प्रस्तुत शोध को परिणाम तक पहुंचाने के लिए यह आवश्यक है कि शोधकर्ताओं के द्वारा भी कुछ उद्देश्यों का निर्धारण किया जाय- जैसे महिला बाल श्रमिकों के परिवार की सामाजिक व आर्थिक स्थिति, उनकी आय व कार्यदशाओं, विभिन्न हितकारी केंद्रों के माध्यम से उनकी शिक्षा प्राप्ति का उन पर प्रभाव, उनमें उत्पन्न आत्मविश्वास व अभिरूचि तत्पश्चात उनके सामाजिक जीवन में आ रहे परिवर्तनों का अध्ययन करना इत्यादि उद्देश्य प्रमुख हैं।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शोध उपकल्पनाओं का निर्माण भी अपरिहार्य है। वास्तविकता यह है कि उपकल्पनाएं ही शोध को एक निश्चित दिशा प्रदान करती हैं।

शोध उपकल्पनाएं

- महिला बाल श्रमिकों का पारिवारिक स्तर निम्न है।
- महिला बाल श्रमिकों में कार्य की तुलना में शिक्षा के प्रति रूझान अधिक है।
- महिला बाल श्रमिकों के आत्मविश्वास में वृद्धि हो रही है।
- महिला बाल श्रमिकों में व्यावसायिक शिक्षा में रूचि तथा आत्मनिर्भर बनने की आशाएं बढ़ी हैं।
- महिला बाल श्रमिकों में शिक्षा के प्रभाव से आशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न हो रहा है।

साहित्य सर्वेक्षण

शोध की वर्तमान ज्ञान की अवस्था में प्रस्तुत शोध के आलोक में किया गया साहित्य सर्वेक्षण तथा उसके विभिन्न पक्षों पर वर्तमान शोध कार्यों का एक संक्षिप्त विवरण भी निमन प्रकार से है :

यू.जी. साहू (1995) ''चाइल्ड लेबर इन अग्रेरियन सोसाइटी'' में कृषि में संलग्न बाल महिला श्रमिकों का अध्ययन किया गया है। इस शोध से यह स्पष्ट है कि कृषि के क्षेत्र में महिला बाल श्रमिक बहुत कम वेतन पर उपलब्ध हैं। अशिक्षित होने के कारण ये नवीन रोजगारों से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं। यही कारण है कि वे मानसिक श्रम की अपेक्षा शारिरिक श्रम को अधिक महत्ता प्रदान कर रहीं हैं।

नीरा बुर्रा (1998) ने **''बोर्न टू वर्क''** में महिला बाल श्रमिकों का पुरूष बाल श्रमिकों से तुलनात्मक सामाजिक दृष्टिकोण का अध्ययन किया है। शोधकर्ताओं का दृष्टिकोण है कि बालिका श्रमिक पुरूष बाल श्रमिक की अपेक्षा घर के अंदर तथा बाहर दोहरा श्रम कर रहीं हैं परंतु फिर भी उसका वेतन पुरूष बाल श्रमिकों की तुलना में बीस प्रतिशत कम है।

इसके अतिरिक्त के.डी. एवं जोसेफ ए. गाथिया (1983) सुभाष शर्मा (1997), डा. पी. चौधरी (1997), डा. राम आहूजा (1999), एन. नीथा (2000) इत्यादि समाजशास्त्रियों के द्वारा किये गए अध्ययन भी उदाहरण के योग्य हैं, जिनके द्वारा शोधकर्ताओं को अपनी शोध समस्या के चयन तथा सूत्रीकरण में सहायता प्राप्त हुई हैं।

साहित्य सर्वेक्षण, अनुभव तथा दृष्टिकोण के आधार पर कुल अर्थों में कहा जा सकता है कि वर्तमान शोध पत्र में महिला बाल श्रमिक का तात्पर्य किसी ऐसी महिला बाल श्रमिक से है, जिसने अपनी आयु का चौदहवां वर्ष पूर्ण नहीं किया है एवं जो ऐसे कार्य में लगी हैं जो पढ़ाई के अवसरों में बाधा डालता है तथा अपनी इच्छा से या अनिच्छा से बहुत कम वेतन पर अधिक श्रम का कार्य करती है। वर्तमान में वे शिक्षा प्राप्त करना चाहती हैं तथा शिक्षा के माध्यम से अन्य व्यावसायिक कार्य करने व सीखने को भी तत्पर हैं, परंतु पारिवारिक स्थितियों के चलते वे शारीरिक श्रम करते रहने को बाध्य हैं।

समग्र तथा प्रतिदर्श चयन/तथ्य संकलन की प्रविधियां तथा पद्धतियां

मुरादाबाद महानगर में लगभग 50 बालश्रम हितकारी केंद्रों में लगभग 1839 महिला बाल श्रमिक अध्ययनरत हैं। उनमें से यादृच्छिक निदर्शन के आधार पर शोधकर्ताओं द्वारा 100 महिला बाल श्रमिकों को उत्तरदाता के रूप में चयन किया गया है।

तथ्यों के एकत्रीकरण में मुख्य रूप से साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इसमें शिक्षा, पारिवारिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति जैसे बिन्दुओं को सम्मिलित किया गया है। तथ्यों के एकत्रीकरण के पश्चात तुलनात्मक जांच करते हुए सारणीयन करके निष्कर्ष निकाले गये हैं। प्रस्तुत शोध में विभिन्न सांख्यिकीय पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। कम्प्यूटर एवं कैलकुलेटर जैसी आधुनिक गणक पद्धतियों के द्वारा भी तथ्यों की सत्यता व वस्तुनिष्ठता की जांच की गई है।

उत्तरदाता परिचय

उत्तरदाता के रूप में चौदह वर्ष से कम की महिला बाल श्रमिकों का चयन किया गया है। ये कम वेतन या बिना वेतन के अधिक शारीरिक श्रम का कार्य करती हैं। उत्तरदाता के रूप में महिला बाल श्रमिकों के चयन के पक्ष में शोधकर्त्ताओं का तर्क है कि बाल्यावस्था में शारीरिक व मानसिक विकास तीव्र गति से होता है। इस आयु में यदि देश की भावी पीढ़ी का विधिवत सामाजीकरण एवं उसको सामाजिक रूप से स्थापित करने हेतु प्रारंभिक सावधानी नहीं बरती गई तो देश में अनेक प्रकार की सामाजिक व आर्थिक विंसगतियां उत्पन्न होने का खतरा बढ़ जाएगा और हमें इसकी भारी कीमत चुकानी पडेगी। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम समस्या के कारणों को जानकर उन्हें समूल नष्ट करने का प्रयास करके एक स्वस्थ समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करें।

शोध की मान्यताएं

प्रस्तुत शोध की वस्तुनिष्ठता, व्यापकता एवं निरपेक्षता को बनाए रखने के लिए शोधकर्ताओं की अध्ययन संबंधी कुछ मान्यताएं रहीं हैं, जिसमें मुख्य है:

1. यदि यह अध्ययन किसी भी दूसरे नगर की महिला बाल श्रमिकों पर किया जाएगा तो प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष उन पर भी लागू होंगे।
2. प्रस्तुत अध्ययन भले ही सीमित क्षेत्र व विशिष्ट संख्या में लिये गए महिला बाल श्रमिकों से संबंधित हैं, परंतु उपरोक्त समस्या का अध्ययन एक व्यापक तथा वृहद क्षेत्र में भी किया जा सकता है।
3. जिन प्रविधियों, पद्धतियों तथा उपकरणों का प्रयोग उक्त अध्ययन में किया गया है, उन्हीं का अनुसरण करते हुए हम विशिष्ट से सामान्य दिशा में भी अपने अध्ययन को संचालित व निष्पादित कर सकते हैं।

निष्कर्ष, तर्क एवं सुझाव

उपरोक्त विषय वस्तु की प्रकृति एवं विषय की प्रासंगिकता एवं संकलित तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भारत में महिला बाल श्रमिक व उनका शोषण एक हृदय विदारक सत्य है। साथ ही यदा-कदा उनका मालिकों एवं ठेकेदारों, एजेन्टों एवं सहकर्मियों आदि के द्वारा यौन शोषण भी आम बात है। क्योंकि वे

मासूम हैं इसलिए शोषण के विरूद्ध अपनी आवाज को मुखर करने में भी असमर्थ हैं। सामान्यत: बालिकाओं को शिक्षा, खेल, मनोरंजन, प्यार व माता-पिता के स्नेह से लम्बे समय तक दूर रखकर मानसिक कष्ट दिया जाता है। प्रस्तुत शोध के माध्यम से परिलक्षित किया गया कि वर्तमान में 45 प्रतिशत महिला बाल श्रमिक घरेलू तथा 55 प्रतिशत बालिकाएं घर के बाहर शारीरिक श्रम करती हैं। यद्यपि कार्य के घण्टे विभिन्न होते हुए भी अधिकतम 52 प्रतिशत बालिकाएं 9 से 10 घण्टे तक कार्य करती हैं। 58 प्रतिशत अपनी पूरी आय अपने माता-पिता को परिवार का पोषण करने के लिए दे देती हैं।

तालिका-1

कार्यस्थल का वातावरण

वातावरण	**संख्या**	**प्रतिशत**
रोशनी की कमी	24	24
दूषित जल	30	30
धुआं व धूल	35	35
पर्याप्त रोशनी	05	05
शुद्ध हवा 03	03	
उचित वातवरण	03	03
योग	**100**	**100**

उपरोक्त तालिका-1 के तथ्यों से परिलक्षित होता है कि महिला बाल श्रमिकों के कार्यस्थल पर उचित वातवरण का लगभग अभाव ही होता है। अधिकतम कार्यस्थलों में रोशनी, शुद्ध जल व धुआं रहित वातावरण का प्राय: अभाव है। फलस्वरूप ऐसे वातावरण में लगातार श्रम करने से टी.वी., टाइफाइड एवं खांसी जैसी बीमारियां जन्म लेती हैं। सर्वेक्षण में यह भी पाया गया कि 75 प्रतिशत नियोजक महिला बाल श्रमिकों के प्रति निर्दयतापूर्वक व्यवहार करते हैं। तालिका-2 इसी ओर संकेत करती है। निसन्देह विपरीत परिस्थितियों में काम करना उनके लिए किसी सजा से कम नहीं है। इसके लिए शोधकर्ताओं का सुझाव है कि सरकार के द्वारा न्यूनतम मानक पूर्ण किये बिना कारखानों को चलाने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

तालिका-02

नियोजकों का व्यवहार

नियोजकों का व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
निर्दयी	55	55
उदासीन	20	20
सहानुभूति पूर्ण	25	25
योग	**100**	**100**

महिला बाल श्रमिकों का शिक्षा के प्रति रूझान ज्ञात करने पर पाया गया कि अधिकांश महिला बाल श्रमिक स्वेच्छा से विभिन्न हितकारी केन्द्रों में पढ़ने जाती हैं अर्थात बाल श्रम के बावजूद भी उनके मन में कहीं न कहीं शिक्षा प्राप्ति के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण है। अध्ययन में यह भी गवेषित किया गया है कि महिला बाल श्रमिक इन शिक्षा केन्द्रों के द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली सामग्री जैसे ड्रेस, किताबें व भोजन आदि के प्रति संतुष्ट हैं। शिक्षा के माध्यम से ये बालिकायें अपने अन्दर आत्म विश्वास, अनुशासन, ज्ञान व सकारात्मक ऊर्जा अनुभव करती हैं। नि:संदेह महिला बाल श्रमिक यदि श्रम कर रहीं है तो साथ में पढ़ाई के प्रति भी रूचि रखती है। तालिका-3 का संकेत इसी की ओर है।

तालिका-3

महिला बाल श्रमिकों की शैक्षिक केंद्रों में उपस्थिति

उपस्थिति	संख्या	प्रतिशत
प्रतिदिन	55	55
हफ्ते में तीन बार	40	40
कभी नहीं	05	05
योग	**100**	**100**

बाल श्रम के दुष्परिणाम जानने के प्रति उत्तरदाताओं की प्रतिक्रिया से ज्ञात होता है कि अधिकांश बालिकायें मानती हैं कि यह हानिकारक है। परन्तु परिवार की जीविका चलाने को बाध्यता उन्हें ऐसा करने को मजबूर करती है। व्यावसायिक शिक्षा से जुड़े बिन्दुओं को पता करने पर ज्ञात हुआ कि अधिकांश महिला बाल श्रमिक इसकी पक्षधर हैं। परंतु व्यावसायिक रूझान ज्ञात करने पर अधिकांश महिला बाल श्रमिकों ने शिक्षिका के व्यवसाय को अधिमानता प्रदान की तत्पश्चात डाक्टर, पुलिस तथा खिलाड़ी बनने पर बल दिया।

तालिका-4 इसी तथ्य को बल प्रदान करती है। इस संबंध में शोधकर्त्ताओं का मानना है कि जिन परिस्थितियों में वे जीवन व्यतीत कर रहीं हैं, भविष्य में उनमें सुधारात्मक परिवर्तन के साथ उनके परिवार का भरण-पोषण उचित ढ़ंग से हो इसलिये विषम परिस्थितियों का दृढ़तापूर्वक सामना करने के लिए भी वे व्यावसायिक शिक्षा को प्राथमिकता दे रही हैं।

तालिका-4
महिला बाल श्रमिकों की व्यावसायिक अधिमानता

व्यवसाय का नाम	संख्या	प्रतिशत
शिक्षिका	40	40
डाक्टर	22	22
पुलिस	18	18
खिलाड़ी	15	15
समाज सेविका	02	02
तटस्थ	03	03
योग	**100**	**100**

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि बालिकाएं राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। इनके जीवन से खिलवाड़ सामाजिक प्रगति को बाधित कर सकता है। इनके बचपन से वंचित करके उन्हें वयस्कों की भांति जटिल व दुरूह जीवन जीने के लिए विवश किया जा रहा है।

वे परिवार की भूख मिटाने व ऋण चुकाने के लिए बाल मजदूर की भूमिका निभा रही हैं। कारखाने में बदहाल स्थिति में काम कर रहीं हैं। साथ ही परिवार व समाज में भेदभाव का शिकार हो रही हैं। यह स्थिति समाज के लिए एक चुनौती है। चूँकि समस्या बहुआयामी है, इसलिए निदान का बहुआयामी होना भी परमावश्यक है। इसके लिए सम्पूर्ण समाज को वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक स्तर पर सकारात्मक प्रयास करने होंगे। सरकारी सहायता के साथ-साथ ईमानदार तथा प्रतिबद्ध स्वयंसेवी संस्थाओं के प्रयास भी अपेक्षित हैं। निसन्देह विभिन्न सरकारी सहायता प्राप्त हितकारी केन्द्रों द्वारा उपलब्ध नि:शुल्क शिक्षा, छात्रवृत्ति, कापी व किताबें, ड्रेस तथा अन्य सुविधायें उनमें शिक्षा के प्रति रूचि एवं जागरूकता पैदा कर रहीं हैं, जिसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि ये केन्द्र अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं।

शिक्षा के साथ ही सामाजिक सुधार की जो प्रक्रिया विकसित हो रहीं हैं वह अन्धेरे में रोशनी के समान हैं। महिला बाल श्रमिक धीरे-धीरे अपने आवरण से बाहर आ रही हैं। विभिन्न प्रतियोगिताओं में वे न केवल सम्मिलित हो रहीं हैं अपितु नये कीर्तिमान भी स्थापित कर रहीं हैं। कहना न होगा कि यदि इन बालिकाओं को पर्याप्त अवसर मिलें तो ये और अधिक कुशलता व प्रतिबद्धता के साथ आगे बढ़ सकती हैं। व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने के प्रति उनकी बढ़ती अभिरूचि से उनमें सामाजिक परिवर्तनों के प्रति नवीन बोध उत्पन्न हो रहा है, जो सामाजिक प्रगति की ओर बढ़ता एक नया कदम है।

अध्ययन के रिक्त बिन्दु

सीमित समय, साधनों व ऊर्जा को दृष्टिगत रखते हुए अध्ययन के कुछ रिक्त बिन्दुओं की ओर शोधकर्त्ता संकेत देना चाहते हैं कि यदि इसी क्षेत्र में भविष्य में अध्ययन किया जाय, तो इन बिन्दुओं को आधार बनाया जा सकता है:

- महिला बाल श्रमिकों के व्यक्तित्व पर व्यावसायिक शिक्षा का प्रभाव।
- महिला बाल श्रमिकों की शिक्षा के फलस्वरूप परिवार की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव।
- बालिकाओं को व्यावसायिक शिक्षा हेतु सरकारी प्रयासों का अध्ययन।
- महिला बाल श्रम से संबंधित कानूनों का अध्ययन।

संदर्भ

आहुजा, राम (1999), *'सोशल प्राब्लम्स इन इंडिया'* रावत पब्लिकेशन जयपुर।

बुर्रा, नीरा (1997), *'वार्न टू वर्क चाइल्ड लेबर'* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

चौधरी, डी.पी. (1997), गाथिया जोसेफ ए. 1983 *'वीमेन एंड चाइल्ड वर्क्स इन अनआर्गेनाइस्ड सेक्टर इन इंडिया',* कान्सेप्ट पब्लिशिंग कं. नई दिल्ली

हेलन, आर. सेंकर (2000), पंचायती राज संस्थानों के लिए बाल श्रम प्रशिक्षण पैकेज।

कुमार, एस. (1983) *'चाइल्ड लेबर एंड एजूकेशन'* (लेख), सिंह एंड मोहन्ती 'चिल्ड्रन एट वर्क' बी.आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली।

नीथा, एन. (2000), वूमैन एंड लेबर मार्केट–ए मैक्रो एकोनोमिक स्टडी।

शर्मा, सुभाष (1997) 'चाइल्ड लेबर इन इंडिया' नई दिल्ली

साहू, यू.जी. (1995), चाइल्ड लेबर इन अग्रेरियन सोसाइटी।

रिपोर्ट वर्ल्ड लेबर (1992), जेनेबा, अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोध अध्ययन के नए आयाम

प्रेरणा शर्मा*

भाषा, समाज और साहित्य के भूमंडलीकरण के दौर में किसी भाषा द्वारा किसी समाज का साहित्य लिखा जा सकता है। 'साहित्य' शब्द का प्रयोग आजकल बड़े व्यापक अर्थ में होने लगा है। यह शब्द संस्कृत के 'सहित' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है 'साथ-साथ'। दर्शन की पोथियों में एक क्रिया के साथ योग रहने को ही साहित्य कहा गया है।

पश्चिमी समालोचकों ने भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति को ही साहित्य माना है। हिन्दी साहित्येतिहास के प्रमुख आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसे स्वीकार करते हुए कहा है कि, ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चितवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''

साहित्य और समाज के बीच संबंध के सही अर्थ में पहले पहल व्यवस्थित विवेचन का श्रेय फ्रांसीसी दार्शनिक और आलोचक ई पॉलित तेन (1828-93) को दिया जाता है। किंतु कल्पनाधर्मी कलाओं की सामाजिक अर्थपतियों को समझने वाला यह पहला व्यक्ति नहीं था, प्लेटो की अनुकरण विषयक अवधारणा में साहित्य को समाज के प्रतिबिम्ब के रूप में देखने की धारणा अंतर्निहित हैं। किंतु तेन से पहले साहित्य के विश्लेषण में मुख्य रूप से समाजशास्त्रीय विषयवस्तु न के बराबर थी। वस्तुतः सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ तक समाज और उसकी संस्थाओं की धर्म निरपेक्ष ताकतों के बारे में मनुष्य वास्तव में तभी सजग हो सका जब मध्ययुगीन संसार का अपनी जड़ सामाजिक संरचनाओं एवं सर्वव्यापी धार्मिक मूल्यों के साथ पतन हुआ। समाज साहित्य

* शोध अध्येता, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

के स्वरूप को निर्धारित करता है, यह धारणा सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के दौरान परंपरागत रूप में सामाजिक कार्य कारण-श्रृंखला के साथ-साथ एक विकसित आलोचनात्मक चेतना का भी अंतर्भाव था।

समाज में साहित्य की बदलती परिस्थितियों का विवेचन

साहित्य में समाज की बदलती परिस्थितियों का विवेचन आज के समय में समाज में साहित्य की सत्ता और स्थिति का एक और पक्ष है। हैरी लेविन ने लिखा है कि साहित्य भी अनुभव की अद्वितीय अवस्था को अपने भीतर संजोये हुए हैं। उनके अनुसार साहित्य संस्था का एक निजी स्वरूप है जिससे उसकी पहचान बनी है, लेकिन वह विकासशील भी है। साहित्य को सामाजिक संस्था मानने वालों में एच.जी. डंकन का नाम आता है, जिन्होंने लेखक, आलोचक और पाठक के बीच परस्पर संबंध से साहित्य की संस्था का स्वरूप स्वीकार किया है।

किसी भी साहित्य में अपने भाव विचार आदि प्रस्तुत करने के लिए, एक भाषा का होना अनिवार्य है। भाषा और भाव में से कौन पहले आया, यह एक अत्यंत जटिल प्रश्न है, एक के अभाव में दूसरे की कल्पना कठिन है।

भाषा का विकास चिंतन क्षमता को प्रभावित करता है। वह चिंतन आज के समय में भाषा को राजनीति में बांध रही है। समाज में भाषा का एक कर्मक्षेत्र राजनीति है। सब जानते हैं कि भारत अनेक भाषाओं का देश है। 1971 की जनगणना के अनुसार भारत में चार भाषा परिवारों से जुड़ी 1652 भाषाएं हैं, जिनमें से 210 भाषाएँ बोलने वालों की संख्या बहुत कम हैं। आज 28 भाषाएँ संविधान में स्वीकृत हैं। सन् 1956 में भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के बाद भी भाषा और सीमा संबंधी झगड़े कम नहीं हुए हैं। भाषा के साथ जनता के भावात्मक लगाव के कारण इन समस्याओं को समझने में सावधानी और धैर्य जरूरी है।

भाषा की राजनीति में शासक वर्ग की दिलचस्पी है क्योंकि उसमें उसका हित है। भाषा की यह राजनीति अब साहित्य को भी प्रभावित कर रही है। आजादी के बाद के वर्षों में हिन्दी-उर्दू के बीच भाषा और साहित्य दोनों स्तरों पर एकता घटी है; दूरी बढ़ी है। सन 1965 में तमिलनाडु में हिन्दी विरोधी भयंकर दंगे हुए, उसकी प्रतिक्रिया धूमिल की कविता ''भाषा की रात'' द्वारा हुई। शासक वर्ग की इस चाल को पहचानते हुए जनता के बीच एकता की जरूरत की ओर संकेत करते हुए कवि कहता है:

''हाय जो असली कसाई हैं, उसकी निगाह में।
तुम्हारा यह तमिल दु:ख, मेरी इस भोजपुरी पीड़ा का भाई है।''

भाषा में शब्द बहुत कुछ समाज में व्यक्ति की तरह होते हैं। लोग अक्सर भाषा के बारे में यह मानते हैं कि जैसे भाषा कोई अलग रखी हुई चीज है और समाज अलग रखी हुई चीज है। अक्सर हम भाषा को व्याकरण, शब्दकोश, शब्द प्रयोग के रूप में देखते हैं। मुझे लगता है कि भाषा को समझने के लिए नोम चामस्की की इस बात को हमें मान लेना चाहिए कि हम लोगों में भाषा को सीखने की जन्मजात क्षमता होती है। अन्यथा तीन साल का बच्चा भाषा का व्यवहार वयस्कों की तरह कैसे कर सकता है। वह भाषा के नियम या व्याकरण नहीं जानता, फिर भी वह भाषा और वह भी अपनी मातृभाषा का व्यवहार करना सीख जाता है। इस प्रकार भाषा का एक ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सरंचना होती है, जो ऐतिहासिक रूप से समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ बदलती रहती है। भाषा की विविधता का सीधा संबंध भौगोलिक सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र की भिन्नता से संबंध रखता है। लेकिन भाषा में यह बदलाव हम आकस्मिक अथवा यादृच्छिक, नहीं मानेंगे, यह संरचित होता है।

भूमंडलीकरण ने आदमी के सौंदर्यबोध को ही सीमित नहीं किया है, मूल्यबोध ा को भी लगभग गिरा दिया। इस योग में ज्ञान सी शक्ति है। लेकिन सूचना ही ज्ञान नहीं है। ज्ञान ने मूल्यों को ज्ञान और सौंदर्यानुभव का भी बड़ा स्थान है। हम एक भाषा में जीते हैं, जो कुछ मूल्यों और सुन्दरताओं से जुड़ी एक संस्कृति में जीना भी है। रामचन्द्र शुक्ल ने एक बात कही थी जो आज भी प्रासंगिक है- ''भाषा ही किसी जाति के भीतरी पुर्जों का पता देती है। किसी जाति को अशक्त करने का सबसे सहज उपाय उसकी भाषा को नष्ट करना है।''

भूमंडलीकरण का असर भारत की सभी भाषाओं पर पड़ा है और उनके भीतर एक सांस्कृतिक हाहाकार मचा हुआ है। यह इसका चिह्न है कि कहीं न कहीं जातीय जागरूकता बची हुई है, जबकि भूमंडलीकरण वाले कहेंगे कि यह अशिक्षा और पिछड़ेपन का लक्षण है।

हिंदीतर भारतीय भाषाओं में पिछले कुछ वर्षों में मातृभाषा प्रेम भूमंडलीकरण के आतंक के कारण बेहद बढ़ा है। इनकी जातीय भावना पुन: आंदोलित हुई है जिसका

नतीजा हमें संविधान की भाषा सूची में बढ़ने वाली लगभग 50 भाषाओं से पता चल जाएगा। यहाँ यह भी समझ लेना सही होगा कि भारतीय भाषाओं का विकास मात्र बाजार द्वारा नहीं होगा। उनका विकास राष्ट्रीय जनतांत्रिक आंदोलनों और आधुनिक पुनर्जागरण से जुड़ा होगा।

विकृत भूमंडलीकरण और विकृत क्षेत्रीयता के बीच एक गहरी सांठ-गांठ है। सांस्कृतिक एकरूपता और सामाजिक भिन्नता, दोनों एक साथ अस्तित्व में हैं। इसलिए भाषा के बारे में सोचने से पहले उस आदमी के बारे में सोचना होगा जिसे विश्व गाँव में ''चेहरा विहिन ही नहीं किया जा रहा है; उसे वर्तमान का कैदी ही नहीं बनाया जा रहा, उसे मूक भी किया जा रहा है।''

शोध प्रविधि और दृष्टि

वर्तमान में भाषा और साहित्य के क्षेत्र में शोध अध्ययन की अनेक प्रविधियां और दृष्टिकोण प्रचलित है:

1. ऐतिहासिक प्रविधि
2. विभाजनवादी परम्परागत प्रविधि
3. अन्तर्मुख या मानस प्रत्यक्ष प्रविधि
4. दार्शनिक प्रविधि
5. अन्तर विद्यापरक अनुसंधान प्रविधि
6. पाठलोचनात्मक अनुसंधान प्रविधि
7. भाषावैज्ञानिक अनुसंधान प्रविधि
8. शैलीवैज्ञानिक अनुसंधान प्रविधि
9. तुलनात्मक अनुसंधान प्रविधि
10. समाजशास्त्रीय अनुसंधान प्रविधि
11. मनोविश्लेषणात्मक अनुसंधान प्रविधि
12. संरचनावादी प्रविधि
13. उत्तर संरचनावादी प्रविधि
14. सांस्कृतिक अध्ययन संबंधी प्रविधि

दृष्टि

1. मार्क्सवादी दृष्टि
2. उत्तर आधुनिकतावादी
3. नव इतिहासवादी
4. दलित
5. स्त्री
6. निम्न वर्गीय विमर्श

विषय के अनुरूप भाषा और साहित्य के शोध के अनेक आयामों की चर्चा से पूर्व मैं शोध शब्द को व्याख्यायित करना चाहूँगी।

हिन्दी में रिसर्च के लिए अनुसंधान, अन्वेषण, विषय, शोध, खोज जैसे अनेक शब्द प्रचलित हैं। 'शोध का अर्थ होता है शुद्ध करना, साफ करना, स्वच्छ रूप देना। अनुसंधान का अर्थ है, किसी लक्ष्य को सामने रखकर दिशा-विशेष में निरीक्षण-परीक्षण करने हेतु आगे बढ़ना।

शोध के लिए कुछ बिंदुओं पर शोधार्थी का प्रायः ध्यान केंद्रित रहना चाहिए जो इस प्रकार है:

1. अनुपलब्ध तथ्यों का अन्वेषण
2. उपलब्ध तथ्यों अथवा सिद्धांतों का पुनराख्यान
3. ज्ञान क्षेत्र का सीमा विस्तार अर्थात् मौलिकता
4. सुष्ठु प्रतिपादन शैली।

उपरोक्त बिंदुओं में शोध के लिए तीसरे और चौथे बिन्दु पर ध्यान देना अनिवार्य होता है। मौलिकता का होना अनिवार्य है, और शैली-सौष्ठव का स्वरूप एक सा न होकर विषय सापेक्ष होता है।

भाषा और साहित्य का शोधार्थी, अज्ञान का ज्ञान, अनुपलब्ध की उपलब्धि, उपलब्ध का शोधन, विचारों का अन्वेषण तथा पुनराख्यान पर जोर देता हैं।

साहित्य में आज अनेक प्रविधियाँ और दृष्टियाँ उपलबध हैं जिनके जरिए हम शोध कर सकें, यहाँ प्रमुख शोध प्रविधियाँ और दृष्टियों का उल्लेख किया जा रहा हैं।

अनुसंधान एक कठिन कार्य है, यह कार्य जहाँ से आरम्भ होता है, और एक

लम्बी यात्रा के पश्चात जहाँ पूर्ण होता है, वहाँ तक शोधकर्त्ता को निरन्तर सतर्क होकर विषय के विभिन्न पक्षों का अवलोकन करते हुए सत्यसंग्रह करना पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह एक सुनिश्चित ढ़ंग से कार्य करे, ताकि वह इधर-उधर न भटक जाए। इसी सुनिश्चित ढंग को शास्त्रीय शैली में ''प्रविधि'' कहा जाता है।

अनुसंधान या शोध का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति तक सीमित नहीं है। ज्ञान को शुद्ध करना तथा उसमें वृद्धि करना भी उसका उद्देश्य है। अत: शोधकर्त्ता जहाँ तक और मौलिक सिद्धांतों की प्राप्ति करता है, वहीं नवीन और प्राचीन के अन्तर को तुलनात्मक ढ़ंग से समझकर वास्तविक एवं उपयोगी तथ्यों तक भी उसे पहुँचना पड़ता है।

शोधकर्त्ता को यह नहीं भूलना चाहिए कि अनुसंधान प्रविधि ऐसी होती है जो सदैव नवीन तथ्यों की ओर उसे अग्रसर करे, यदि ऐसा प्रतीत होने लगे कि वह नवीन तथ्यों की ओर उसे अग्रसर नहीं कर रहा अर्थात शोध पद्धति पर्याप्त और उपयुक्त नहीं है तो उसे अपने शोध कार्य का स्व-आकलन करना चाहिए।

भाषा और साहित्य में प्रयुक्त शोध प्रविधियाँ

विभाजनवादी परम्परागत प्रविधि : यह अनुसंधान की वह प्रविधि है, जिसके अनुसार विषय का परीक्षण विभिन्न तत्वों के अनुसार उसका विभाजन करके किया जाता हैं। उदाहरणार्थ साहित्यिक कृतियों के अनुसंधान में एक परंपरा चली आ रही है, कृतित्व को शब्द, अर्थ, विषय-सामग्री, रस, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार काव्यानुभूति में विभाजित करके देखा जाता है, और तदनुकूल ही विश्लेषण-विवेचन करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

अन्तर्मुख या मानस प्रत्यक्ष प्रविधि : इस प्रविधि के अनुसार कवि और सहृदय के मन में उतर कर उसका मर्म समझना और मानस का प्रत्यक्षीकरण होना आवश्यक है। इस प्रविधि में वैयक्तिकता की प्रधानता रहती है तथा प्रमाण एवं निष्कर्ष प्राय: प्रभावपरक हो जाते हैं। एक ही विषय में अनुसंधान में इस प्रविधि से जब जब भिन्न-भिन्न विद्वान प्रवृत होते हैं, तब उनके निष्कर्ष भी समान नहीं होते। फलत: कृति का सत्य ही बदल जाता है। या यह कहा जा सकता है कि अविश्वसनीय हो जाता है।

दार्शनिक प्रविधि : शोध के क्षेत्र में दर्शन के आधार पर सत्यान्वेषण की प्रवृत्ति भी है। इस प्रविधि के अनुसार किसी दर्शन का ढाँचा शोध विषय पर लागू कर दिया जाता है। दार्शनिक चिन्तनवृत में स्थित होकर किया गया अनुसंधान मूल विषय का एक बाह्य सत्य से आवृत कर देता है और कृति का सत्य दबा रह जाता है। उदाहरणार्थ तुलसी, सूर, पंत, निराला आदि के काव्य का अध्यन करते समय जब किसी दर्शनशास्त्र के सिद्धांतों को आधार बनाया जाता है।

ऐतिहासिक शोध प्रविधि : अरस्तु ने कहा है कि, ''मनुष्य की समस्त कलाकृतियाँ सामान्य रूप से तथा साहित्य विशेष रूप से व्यक्ति और समाज का आंतरिक इतिहास निर्मित करते हैं।

ऐतिहासिक अनुसंधान प्रविधि अतीत की घटनाओं का संकलन न होकर विकास क्रम का अध्ययन है, जिसका उद्देश्य भूत के आधार वर्तमान को समझना और भविष्य का मार्ग प्रशस्त करना है।

ऐतिहासिक अनुसंधान के सर्वप्रथम प्रयोक्ता इतिहासकार 'टेन' हैं। उन पर डार्विन के विकासवाद का प्रभाव भी पड़ा और मार्क्सवादी चिंतन का भी। इस प्रकार देखा जाऐ तो वैज्ञानिक संचेतना के परिणामस्वरूप ऐतिहाससिक परिदृष्टि को अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ है।

शोध में इतिहास का अध्ययन अथवा उस विवेच्य विषय के ऐतिहासिक क्रम में अध्ययन जरूरी है। साहित्य अनुसंधान में इतिहास दृष्टि का होना आवश्यक हैं।

ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति के मूल सूत्र :

1) प्रविधि द्वारा साहित्य के इतिहास को एक क्रमबद्ध रूप प्राप्त हुआ।
2) स्वरूप में नवीनता के कारण एवं प्रभाव का पता चलता है।
3) सत्य और तथ्य की दृष्टि स्पष्ट होती है।
4) परंपरा में कृति के स्थान का महत्व निर्धारित होता हैं।
5) स्वरूप में परिस्थिति के कारण एवं परिस्थिति का बोध होता है।
6) मानव के इतिहास, शास्त्रीय इतिहास तथा साहित्यिक इतिहास का परिचय मिलता है।

मानव जो कुछ सीखता है उसका मूल इतिहास में निहित होता है, जो कुछ सिखता है वह इतिहास की अगली कड़ी बन जाता है।

अंतर-विद्यावर्ती प्रविधि : हिंदी में 'अंतर-विद्यावर्ती' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के इंटर-डिसिप्लनरी' शब्द के पयार्य रूप में होने लगा है। इसका सामान्य अर्थ होता है, एकाधिक विद्या-शाखाओं का परस्पर प्रभाव या उससे संबद्ध नियमों या सिद्धांतों के आधार पर प्रभाव की पहचान।

साहित्य समग्र ज्ञान अनुभूति या दर्शन का पूँजीभूत समन्वय होता है। अत: स्वाभाविक है कि साहित्य का अध्ययन साहित्यशास्त्रीय सिद्धांतों से इतर ज्ञान के अन्य कोणों (विधाओं) के आधार पर भी हो क्योंकि वे उसमें संचरित होते रहते हैं।

यह अध्ययन ऐसी अन्य विधाओं में जैसे मनोविज्ञान, सौन्दर्यशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा विज्ञान, इत्यादि किसी भी विधा के आधार पर हो सकता है। अंतर विद्यावर्ती शोध शोधकृति में समाहित बोध को सभी पक्षों का उद्घाटन करता है। शोधार्थी जिस विधा के आधार पर शोध करना चाहता है उसके लिए पहले अध्ययन भूमि या सिद्धांत पक्ष की तैयारी के रूप में उस विधा का अध्ययन करता हैं।

अंतर विद्यावर्ती शोध आधुनिक युग की आवश्यकता है। प्रत्येक विद्याशाखा चूंकि जीवन को समझने का एक मार्ग प्रदान करती है, इसलिए साहित्य का अंतर विद्यावर्ती शोध स्तर पर अध्ययन भी अनिवार्य है, क्योंकि साहित्य भी जीवन और ज्ञान की अखंडता का वाहक है।

पाठालोचनात्मक अनुसंधान प्रविधि : 'पाठ + अनुसंधान' इन दोनों शब्दों से निर्मित हुए शब्द पाठानुसंधान शब्द का सामान्य अर्थ है - पाठ विषयक की गई खोज। इस प्रविधि का मूल लक्ष्य है, शुद्ध पाठ का प्रतिपादन। कई विद्वानों ने इस प्रविधि को पाण्डुलिपि विज्ञान कला ही माना है।[15] पाठालोचन की प्रक्रिया को चार भागों में विभक्त किया गया है।

1. संग्रह और वंश वृक्ष निर्माण
2. पाठ का निर्माण या निर्धारण
3. पाठ-सुधार
4. पाठ-विवेचन

उपरोक्त दी गई प्रक्रिया में पाठ विवेचन को साहित्य में आलोचना के नाम से जाना जाता है। माता प्रसाद गुप्ता के अनुसार आलोचक को सर्जक से तादात्म्य स्थापित करना पड़ता है।

भाषा वैज्ञानिक शोध प्रविधि : भाषा विज्ञान भाषा की संरचना और उसके स्वरूप का विश्लेषक विज्ञान है। कवि अथवा लेखक की भाषा की संरचना का विश्लेषण उसकी मानसिक संरचना का पता देता है। साहित्यकार की भाषा में शब्द एवं अर्थ परस्पर संयुक्त रहते हैं। साहित्य में प्रयुक्त भाषा में निहित अर्थों को जानने के लिए साहित्य का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षित रहता है।

शोध की दृष्टि से हमें साहित्य को मोटे तौर पर दो भागों में बाँट सकते हैं।

1. भाषा, और
2. अभिव्यक्ति विषय।

भाषा विज्ञान एक स्वतंत्र विषय है, इसे हम अध्ययन क्षेत्र में तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं:

1. बोली, विभाषा, भाषा तथा भाषाओं का अध्ययन।
2. लोक साहित्य का अध्ययन।
3. साहित्य का अध्ययन।

प्रथम विभाज्य के अंतर्गत शास्त्रीय दृष्टि से भाषा की संरचना का इस प्रकार अध्ययन किया जाता है, जैसे स्वनिम विज्ञान, ध्वनि विज्ञान, रूपिम विज्ञान, वाक्य विज्ञान, अर्थ विज्ञान आदि।

भाषा के इस प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययन की चार पद्धतियां हैं:

1. वर्णानात्मक
2. ऐतिहासिक
3. तुलनात्मक
4. प्रायोगिक

प्रायोगिक पद्धति में भाषा के अन्यत्र उपयोग जैसे यांत्रिक उपकरणों, शब्दकोश निर्माण, लिपि सुधार इत्यादि पर विचार किया जाता है। भाषानुवाद, प्रशासनिक भाषा प्रयोग भी चर्चित हैं।

शैली वैज्ञानिक अनुसंधान प्रविधि : शैली विज्ञान साहित्य की वस्तुनिष्ठ व्याख्या का विज्ञान है जिसमें कृति को केवल, कृति के रूप में कृति के बाहर की अन्य सभी

चीजों से अलग कर देखने का यत्न किया जाता है। ''साहित्य कृति भाषिक अभिव्यक्ति होती है और इसलिए उसका सत्य उसका शिव, उसका सुंदर स्पष्टत: या अस्पष्टत: प्रत्यक्षत: या परोक्षत: उसकी भाषिक संरचना से जुड़ा हुआ है।''

वस्तुत: कृति और भाषिक संरचना एक ही चीज है। कृति का अस्तित्व उसकी भाषिक संरचना में ही होता है। इसलिए शैलीविज्ञान कृति की भाषिक संरचना के माध्यम से ही कृति को व्याख्यायित करता है। इस विधि से अनुसंधानकर्ता को भाषिक अध्ययन की विधियां पूर्ण रूप से ज्ञात होनी चाहिए। साथ ही कृति की भाषा के व्याकरण के रूपों का अध्ययन भी आवश्यक है। कुछ विद्वानों ने शैली विज्ञान को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का एक रूप माना है। यों शैली विज्ञान का कार्य है, साहित्य के सौन्दर्य का उद्‌घाटन, अत: उसे सामान्य भाषाविज्ञान में न तो समाहित किया जा सकता है और न उसकी इसे शाखा ही माना जा सकता है।

शैलीविज्ञान प्रविधि भाषा के आधार पर की गई साहित्य का सौंदर्यमूलक अनुसंधान है।

शैली विज्ञान प्रविधि में अनुसंधान चार दृष्टियों से होता है:

1. साहित्यकार की दृष्टि से।
2. पाठक/श्रोता की दृष्टि से।
3. सांस्कृतिक दृष्टि से (इतिहास, धर्म, नीति, समाज आदि)
4. कृति की दृष्टि से।

शैलीविज्ञान कृति के 'रूप' और 'अर्थ' के संबंधों को उजागर करता है।

तुलनात्मक अनुसंधान प्रविधि : मैक्समूलर ने कहा है ''All higher knowledge is gained by comparison, and rests on comparison'' (सभी उच्चतर ज्ञान, की प्राप्ति तुलना पर आधारित है।) वास्तव में तुलनात्मक अध्ययन का लक्ष्य आलोचना और अनुसंधान से भी अधिक महत्वपूर्ण है। तुलनात्मक अध्ययन मानव के सीमित ज्ञान क्षेत्र का विस्तार करता है। विभिन्न साहित्यों की भाषागत विशेषताओं में साहित्यिक एकरूपता एवं विषमता का निरूपण करना ही तुलनात्मक अनुसंधान प्रविधि का प्रमुख लक्ष्य है।

तुलनात्मक अनुसंधान करने वाले शोधार्थी के लिए दोनों भाषाओं की सामाजिक सांस्कृतिक साहित्यिक प्रवृतियों एवं गतिविधियों का सम्पूर्ण ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है।

तुलनात्मक अनुसंधान के प्रकार :

1. दो साहित्यकारों/लेखकों या कृतियों की तुलना (जैसे कबीर और तुलसी)
2. दो प्रवृतियों की तुलना (जैसे हिन्दी-तेलगु के स्वच्छंदतावादी काव्य)
3. दो साहित्यक कृतियों या विधाओं की तुलना
4. दो युगों की तुलना करना (हिंदी मलयालम कृष्ण भक्ति काव्य)

तुलनात्मक अनुसंधान के जरूरी चार तत्व :

1. दोनों भाषाओं में निहित तथ्य सूत्रों की खोज
2. उनकी प्रसंगानुकूल व्याख्या
3. समानता तथा असमानता का निरूपण
4. संभावित एकरूपता का निर्देश।

तुलनात्मक शोध प्रविधि में प्रमुख है विषय का चयन तत्पश्चात् अन्य भाषा का भावानुवाद आदि।

समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि : समाजशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें समाज की मूल संरचना तथा समाज को दुर्बल या संगठित करने वाले सभी तत्वों का अध्ययन किया जाता है।

प्रख्यात पश्चिमी समालोचक ने कहा है, न साहित्य समाज रूपी सीपी से निकली मोती है।''

समाजशास्त्रीय परिधि में अध्ययन को चार भागों में बाँटा गया है :

1. **समाजशास्त्रीय विश्लेषण :** मानव संस्कृति और समाज
2. **सामाजिक जीवन की प्रथम इकाइयां :** सामाजिक संबंध व्यक्ति, समूह समुदाय, समितियां आदि
3. **आधारभूत सामाजिक संस्थाएं :** परिवार तथा आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक संस्थाएं।

4. **मौलिक सामाजिक प्रक्रियाएं :** विभेदीकरण, सहयोग समायोजन, सामाजिक संघर्ष सामाजीकरण, आदि।

समाजशास्त्र के अध्यन क्षेत्र को देखकर इतना तय हो जाता है कि साहित्य का समाजशास्त्रीय शोध अनिवार्यता है। साहित्य व्यक्ति समुदाय, परिवार, संस्थाओं और मूल्यों के द्वारा ह्रास-विकास तथा सांस्कृतिक प्रभावों को लेकर जो चलता है।

मनोविश्लेष्णात्मक अनुसंधान प्रविधि : वास्तव में मनोविश्लेषण मनोविज्ञान की ही एक ज्ञान संपन्न शाखा है। यूँ तो सच्चाई यह है कि मनोविज्ञान भी कोई पुराना शास्त्र या विज्ञान नहीं है। मनोविश्लेषण के प्रवर्तन का श्रेय सिंग्मड फ्रायड (1856-1939) को दिया जाता है। फ्रायड के सिद्धांतों का मूलाधार - ''सुविचारित नियतत्त्ववाद है। फ्रायड के चिंतन का दूसरा आधार अवचेतन - सिद्धांत अथवा अवचेतन मन की खोज है। फ्रायड मन के तीन भाग मानते हैं- चेतन (कॉन्शस), पूर्व चेतन (प्री-कान्शस) और अवचेतन (अनकॉन्शस)। फ्रायड ने मनोविश्लेषण में अवचेतन सिद्धांत की तरह ही स्वप्न सिद्धांत को बहुत महत्व दिया।

मनोविश्लेषण के क्षेत्र में दूसरे महत्वपूर्ण विद्वान हुए एल्फ्रेड एडलर। एडलर वैयक्तिक मनोविज्ञान के प्रतिस्थापक थे। उन्होंने अधिकार भावना को केन्द्रीय स्थान दिया है। इनके अनुसार मनुष्य के विकास में सबसे अधिक भूमिका समाज की होती है। इन्होंने सांस्कृतिक तत्वों के महत्व की जोरदार ढ़ंग से घोषणा की है।

तीसरे प्रमुख मनोविश्लेषक हुए कार्ल मुस्ताफ चुंग; इन्होंने चेतन मन की तुलना में अवचेतन मन के क्षेत्र को अधिक विस्तृत और महत्वपूर्ण माना है। इन्होंने अवचेतन मन के दो भाग बताए हैं:

1. वैयक्तिक
2. सामूहिक

इन्होंने जातीय स्मृति का सिद्धांत भी दिया है। मनोविश्लेषणवादी प्रविधि साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह साहित्य बिंबों में सार्थकता और निरर्थकता का निर्धारण करने में सहायक है। कथा साहित्य के पात्रों के मन का ज्ञान भी करवाता है।

संरचनावादी प्रविधि : संरचनावाद कोई आंदोलन या अनुशासन नहीं बल्कि एक अन्वेषण पद्धति है। संरचना को एक सामान्य अर्थ में समझना बेहतर होगा, संरचना किसी भी वस्तु या घटना के विभिन्न घटकों के अलग-अलग बिखरे स्वरूप का नाम नहीं बल्कि समग्र, सुसंघटित रूप का नाम है।

इसको इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, ''भाषा के भीतर अर्थ की निमिति का अध्ययन संरचनावाद कहलाता है। साहित्य एक भाषिक संरचना है इसलिए किसी कृति की श्रेष्ठता भी बाहरी तथ्यों से नहीं बल्कि संरचना के आधार पर ही सिद्ध हो सकती है।

संरचना को सर्वप्रथम एस.ई. नादवेल ने The Theory of Social structure में एक तकनीकी पद मानते हुए लिखा : ''संरचना का तात्पर्य भागों का व्यवस्थित रूप से जमा होना है। यह संरचना सामान्यतया अपरिवर्तनीय होती है, जबकि इसके भाग साधारण रूप से परिवर्तनशील होते हैं।'' संरचनावादी मानते हैं कि ''अर्थ हमेशा संरचनाओं में होता है, चूँकि भाषा अपने आप में संरचना है, इसलिए हर चीज जो व्यवहार में है, वही संरचना है तथा इस संरचना की निर्मिति के नियम का अध्ययन संरचनावाद कहलाता है।''

1960 में अपनी पुस्तक 'A course in general linguistic' में सास्यूर ने लिखा है कि ''भाषा चिह्नों की एक संपूर्ण व्यवस्था है और इन्हें एक साथ समझाया जा सकता है'' इसलिए हमें भाषा को व्यवस्था की तरह पढ़ना चाहिए, ऐतिहासिक विकास की तरह नहीं।'' यानि जिस प्रकार हम समाज के विभिन्न भागों के संबंधों का अध्ययन करके सम्पूर्ण समाज को समझ सकते हैं ठीक वैसे ही भाषा के विभिन्न भागों के संबंधों को समझकर सम्पूर्ण भाषा को समझ सकते हैं। इसके प्रमुख तत्व है:

1. लाग अर्थात् लिखित (Longue)
2. वाक् परोल (Parrole) अर्थात बोली
3. संकेत (Sign) भाषा की बुनियादी इकाई संकेत है ये संकेत मनमाने या यादृच्छिक होते हैं इसके भी दो पहलू हैं।
   1) संकेतक (Signifier)
   2) संकेतित (Signified)

जहां संकेतक का संबंध ध्वनि से वहीं संकेत का संबंध मानसिक प्रतिनिधित्व से।

संरचनावाद ने यह स्थापित किया कि किसी रचनाओं को समझाने के लिए लेखक को समझना अनिवार्य नहीं है। इसने कृति के भाषिक पक्ष के महत्व को रेखांकित किया है। कृति के आस्वाद ने पाठक की भूमिका को भी महत्व दिया है।

अत: यह प्रविधि ऐसे माने सामने रख सकती है जो कालातीत हो, जिनके माध्यम से किसी भी देश, काल या विधा की रचना का मूल्यांकन हो सके।

उत्तर संरचनावादी प्रविधि : रूसी रूपवाद का दुनियाभर के साहित्य और भाषा चिंतन पर असर हुआ। इस रूपवाद ने साहित्य को रचनाकार और परिस्थिति से अलग कर दिया। लिखित पाठ की अवधारणा के पहले बीज यहीं से पड़े जो बाद में संरचनावाद तथा उत्तर संरचनावाद के बुनियादी और निर्णायक पद बने। यहीं आधुनिक भाषा विज्ञान और साहित्य का एक नया संबंध स्थापित हुआ। उत्तर संरचनावाद, संरचनावाद का ही अगला चरण है। इन दोनों को उस तरह नही अलगाया जा सकता जिस तरह आधुनिकतावाद और उत्तर आधुनिकतावाद को अलगाने का प्रयत्न है। उत्तर संरचनावाद को स्थापित करने का श्रेय मिशेल फूको, ज्यांलका, रोलांबार्थ, देरिदा को जाता है'।

देरीदा की महत्वपूर्ण अवधारणा ''लेखक की मृत्यु'' से जुड़ी हुई है। यानि जब रचना में लेखक के अभिप्राय का कोई अर्थ नहीं होगा रचना का आन्तरिक स्वरूप निश्चित नही होगा। देरिदा इसी को विखण्डनवाद भी कहते हैं। समग्रत: उत्तर संरचनावाद, शब्द की अपेक्षा लेखक को महत्वपूर्ण मानता है। उसका कहना है कोई चीज पाठ से बाहर नहीं है।

समग्रत: उत्तर संरचनावाद रचनाकार की परिस्थिति – स्थिति से रचना को अलग करके उस कृति को कृति के रूप में देखता है। इसने साहित्य के रूप में साहित्य के अध्ययन की एक सम्पूर्ण पद्धति को प्रस्तुत किया है।

सांस्कृतिक अध्ययन संबंधी प्रविधि : सांस्कृतिक अध्ययन को एक सीमा या चौखटे में बाँधना कठिन है क्योंकि यह सदा से और आगे भी गैर-अनुशासनात्मक क्षेत्र रहा है। इसे एक संबद्ध इकाई के रूप में देखना मुश्किल है। सांस्कृतिक अध्ययन जीवन की वस्तुओं के बारे में निहित संवादों, विचारों, सरोकारों का अध्ययन करता है।

सांस्कृतिक अध्ययन संबंधी प्रविधि भारतीय साहित्य में नई चीज़ है, परंतु यह भाषा और समाज से जुड़ती है तो कई चीजें हमारे सामने ला कर खड़ाकर देती है।

भाषा और साहित्य में प्रयुक्त प्रमुख शोध दृष्टि

मार्क्सवादी दृष्टि : मार्क्स और एंगेल्स ने उन्नीसवीं सदी के मध्य तथा उत्तरार्द्ध काल में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सृजन किया जिसका दार्शनिक आधार द्वंद्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद है।

साहित्य और कला का विवेचन-विश्लेषण करने वाली मार्क्सवादी समालोचना केवल मार्क्स-एंगेल्स की उक्तियों और टिप्पणी तक सीमित नहीं है। इसे विकसित और पल्लवित करने में प्लेखानोव, लेनिन, लुनचार्स्की, माओत्से तुंग और ग्रमशी का भी भारी योगदान रहा है।

मार्क्सवाद मूलत: विकास को समझने की पद्धति है। मार्क्सवाद जीवन और जगत की व्याख्या करने तक ही सीमित नहीं रहता। वह विकास की प्रक्रिया को समझ कर इस विकास को भी मानवीय बनाना चाहता है।

नव इतिहासवादी : साहित्य के क्षेत्र में नव इतिहासवाद नई अवधारणा है। अब तक इतिहास वर्चस्व का इतिहास है। नव इतिहास ने इतिहास के इस क्रम को उलटकर देखा। यह केवल घटना, तिथि को जरूरी नहीं मानता। इस बात की वकालत भी करता है कि हम उन विचारों को खोजें जिनके कारण यह पैदा हुआ। यानि यह बिना तथ्य का इतिहास भी हो सकता है।

नवइतिहासवाद को सामने लाने का प्रमुख उद्देश्य यही था कि साहित्य और इतिहास के संबंध की जटिलता पर नए सिरे से विचार किया जाए और इस गुत्थी को साहित्य के विशिष्ट रूप को ध्यान में रखकर सुलझाया जाए।

नवइतिहासवाद पर मुख्य प्रभाव उत्तर-संरचनावादी विचारक फूको और अल्यूसे का है। उनका कहना है कि, ''इतिहास अपनी यात्रा विचारधारा के बूते तय करता है तथा प्रभुत्वशाली वर्ग विचारधारा की आक्रमकता से सामाजिक असमानता को अपने हितों के लिए जीवित रखता है।

वास्तव में नव इतिहासवाद पढ़ने की उस प्रक्रिया का नाम है जिसके माध्यम

से यह देखा और दिखाया जाता है कि किस प्रकार साहित्यक पाठ न केवल अपने युग के तौर-तरीकों तथा आस्थाओं को व्यक्त करते हैं, वरन् उन तौर-तरीकों व आस्थाओं का निर्माण एवं उन्हें प्रभावित भी करते हैं। नव इतिहासवाद समाज में साहित्य के उद्‌भव की व्याख्या करता है।

दलित विमर्श एवं स्त्री विमर्श भी शोध करने की एक नवीन दृष्टि है। यह विमर्श अस्मिता मूलक विमर्श है। जहाँ दलित विमर्श स्वानुभूति व सहानुभूति जैसे विवादों में रहकर अपनी पहचान बना चुका है, वहीं स्त्री विमर्श लिंग और जेण्डर के भेद को स्पष्ट करते हुए अपनी बात स्पष्ट कर रहा है। जहाँ सिमोन द बोउवा ने 1949 में अपनी पुस्तक The Second Sex में कहा है ''औरतें पैदा नहीं होती बनाई जाती हैं''। वहीं अब यह स्त्रीवादी विमर्श तीन रूपों में देखने को मिलता है :

1. उदार स्त्रीवाद
2. मार्क्सवादी स्त्रीवाद
3. क्रांतिकारी स्त्रीवाद

निम्नवर्गीय विमर्श, 'सबाल्टर्न स्टडीज' आज शोधार्थी के लिए नवीनतम व महत्वपूर्ण दृष्टि है, क्योंकि यह साहित्य को समझने के लिए एक नया दृष्टिकोण प्रदान करती है।

निम्नवर्गीय विमर्श औपनिवेशिक भारत के इतिहास लेखन से संबद्ध है, जिसके केन्द्र में राष्ट्रीय आंदोलन हैं। इस इतिहास लेखन की विधिवत शुरुआत रणजीत गुहा के संपादन में प्रकाशित 'सबाल्टर्न स्टडीज' (1982 ई.) से होती है। दरअसल 1982 में आम जनता से संबंधित भारतीय इतिहास लेखन को लेकर की गई इस पहल ने शीघ्र ही एक 'अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप और महत्व हासिल कर लिया। आज भारत ही नहीं वरन् 'तीसरी दुनिया' के अन्य इतिहासकारों एवं संस्कृति कर्मियों के लिए यह एक चुनौती और ध्येय दोनों है। इस दृष्टि से सबाल्टर्न इतिहास लेखन को विश्व पटल पर इतिहास लेखन की दिशा में एक महत्वपूर्ण भारतीय उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। निम्नवर्गीय इतिहास लेखन इतिहास को नीचे से देखने की कोशिश का नतीजा है कि इसे हम जनाधारित इतिहास का अध्ययन भी कह सकते हैं।

अंततः उपरोक्त विश्लेषण के दौरान अनेक नवीन, नवीनतम एवं पुरानी प्रविधियों, पद्धतियों एवं दृष्टियों को अपने शोध में प्रयुक्त करते हुए, हमें साहित्य की अनेक अवधारणाओं से इनका समागम करना चाहिए। शोधार्थी को शोध के दौरान इन प्रविधियों का प्रमाणन करते हुए, शहरी डुबकियाँ लगाते हुए अनेक नए तथ्य पता चलेंगे।

संदर्भ

रामचंद्र शुक्त, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोक भारती – तृतीय संस्करण, 2004, पृष्ठ ixx

साहित्य का समाज शास्त्रीय चिंतन, संपादन – निर्मला जैन, पृष्ठ 18, हिन्दी अध्ययन कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1986

मैनेजर पांडे, आलोचना की सामाजिकता, वाणी प्रकाशन, 2005, पृष्ठ 101

आज के सवाल–16, भाषा और भूमंडलीकरण, शब्द संधान, प्रथम संस्करण–2008, पृष्ठ 48

'संसद से सड़क तक' भाषा की रात, धूमिल, पृष्ठ 46 वाणी प्रकाशन

राम चन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास लोकभारती, तृतीय संस्करण–2004, पृष्ठ 18

भाषा और भूमंडलीकरण, आज का सवाल–16, 2008, शंभूनाथ, शब्द संधान प्रकाशन, पृष्ठ 56

डा. नगेन्द्र ग्रंथावली–7, अनुसंधान का स्वरूप, पृष्ठ 44

डा. नगेन्द्र ग्रंथावली–7, अनुसंधान का स्वरूप, पृष्ठ 47

अनुसंधान : स्वरूप एवं प्रविधि, डा. राम गोपाल शर्मा 'दिनेश' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 16

शोध प्रविधि, डा. विनय मोहन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण : 1990, पृष्ठ 132

अनुसंधान की प्रक्रिया, संपादक– डा. सावित्री सिन्हा, डा. विजयेन्द्र, स्नातक, हिन्दी अनुसंधान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृष्ठ 155

साहित्यक अनुसंधान, डा. राजेन्द्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, पृष्ठ 180

पांडुलिपि संपादन कला में डा. राममूर्ति त्रिपाठी का आलेख

साहित्य अध्ययन की दृष्टियां में डा. भोलानाथ तिवारी का आलेख, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 114

साहित्य अध्ययन की दृष्टियां में डा. भोलानाथ तिवारी का आलेख, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 107

तुलनात्मक अध्ययन, डा. नगेन्द्र, संधान प्रकाशन, पृष्ठ 13

साहित्य अध्ययन की दृष्टियां में डा. राम दरश मिश्र का आलेख, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 18

देरिदा और विखण्डनवाद, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 256, वाणी प्रकाशन
देरिदा और विखण्डनवाद, सुधीश पचौरी, पृष्ठ 270, वाणी प्रकाशन
अनभै साँचा, पत्रिका, 2008, अगस्त में डा. नित्यानंद तिवारी का आलेख, पृष्ठ 47
निम्नवर्गीय प्रसंग, भाग–2, संपादक शाहिद अमीन, ज्ञानेन्द्र पांडेय, पृष्ठ 15, राजकमल प्रकाशन

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए व्यवहारिक दृष्टिकोण जरूरी

दामोदर जैन*

आखिर इस तथ्य की कब तक उपेक्षा की जाती रहेगी कि स्कूल की शैक्षणिक तैयारी में शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। अभी तक पूरे देश में स्कूली शिक्षा में सुधार के नाम पर, कभी स्कूलों का विकल्प खोजा गया तो कभी शैक्षिक साधनों की पूर्ति के नाम पर नई-नई योजनायें और कार्यक्रम चलाये गये। सर्व शिक्षा अभियान के प्रथम चरण के बाद अब माध्यमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण हेतु चलाये जाने वाले सर्व शिक्षा अभियान के दूसरे चरण में सक्सेस-2, लागू करने की तैयारी की जा रही है, परंतु अभी तक यह तय नहीं हो पाया है कि प्रभावी और गुणवत्तायुक्त शिक्षण प्रक्रिया के लिए योग्यतम, सक्रिय और उत्साही शिक्षकों की नियुक्ति/पूर्ति कैसे संभव है? शिक्षक तो माने सबके गुलाम बनकर रह गये हैं। शिक्षकों को सर्वाधिक शोषण का शिकार बनाया जा रहा है। उन्हें एकदम निकम्मा साबित कर अकर्मण्य बताया जा रहा है। शिक्षा की रीढ़ कहलाने वाले शिक्षकों की घोर उपेक्षा के कारण ही स्कूली शिक्षा दिनों दिन बिगड़ती जा रही है। शिक्षकों में व्याप्त गहन निराशा को दूर किये बगैर स्कूली शिक्षा में सुधार की कल्पना व्यर्थ ही है।

शिक्षक समाज की सर्वाधिक संवेदनशील इकाई होते हैं। शिक्षक अपना काम ठीक तरह से नहीं करते - यह आरोप तो सर्वत्र लगाया जाता है लेकिन यह विचार कोई नहीं करता कि उसे कक्षा में ठीक प्रकार से पढ़ाने क्यों नहीं दिया जाता? आये दिन गैर शिक्षकीय/गैर शैक्षिक कार्यों में कोल्हू के बैल की तरह इस्तेमाल

* एल-26, समन्वय कुटी, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल दूरभाष: 9893710507

करता प्रशासन, शिक्षकों की शैक्षिक सोच को, शैक्षिक कार्यक्रमों को पूरी तरह ध्वस्त कर देता है। बच्चों को पढ़ाना-सिखाना सहज सरल नहीं होता और न ही बच्चे कार्यालयी फाईल होते हैं। वे जितनी जल्दी सीखते हैं उतनी ही जल्दी भूलते हैं। प्रशासनिक कार्यालय और अधिकारीगण, शिक्षा और शिक्षकों को भरपूर उपेक्षा करते हैं साथ ही उन्हें काम भी नहीं करते देते। इसी कारण स्कूली शिक्षा में सुधार संभव नहीं हो पा रहा है।

सुधार के लिए क्या करें

मूल प्रश्न यह है कि स्कूली शिक्षा क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण सुधार के लिए क्या किया जाएं? स्कूली शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए हमें प्रथमतः स्कूलों के बारे में अपनी परंपरागत राय को बदलना होगा। ''स्कूल, बच्चों की शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र होते हैं कार्यालय नहीं।'' अभी स्कूलों को कार्यालय मानकर, शिक्षकों को नित्य प्रति अनेक प्रकार की डाक बनाने और आंकड़े देने के लिए मजबूर किया जाता है, जिससे बच्चों की पढ़ाई में अनापेक्षित व्यवधान होता रहता है। बच्चे अपने शिक्षकों से सतत जुड़े रहना चाहते हैं, विशेषकर प्राथमिक स्तर पर। अतः स्कूलों को कार्यालयीन कामकाज से मुक्त कर वास्तव में प्रभावी शिक्षण संस्थान बनाया जाना चाहिए।

विद्यालय को सामुदायिक शिक्षण केन्द्र के रूप में विकसित किया जाये

अभी हमारे शासकीय विद्यालय बाल शिक्षण (6-14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों) के लिए कार्य कर रहे हैं। शिशु शिक्षण के लिए संचालित आंगनबाड़ी और प्रौढ़ शिक्षा के लिए कार्यरत सतत शिक्षा केन्द्रों का संबंध विद्यालय से कहने भर को है, जबकि इन सभी के बीच बेहतर तालमेल (सामंजस्य) जरूरी है। यदि इन तीनों एजेंसियों को एकीकृत कर दिया जाये तो 3 से 50 वर्ष तक के लिए शिक्षण की बेहतर व्यवस्था संभव है। शिशु शिक्षा के लिए आंगनबाड़ी केन्द्रों को तैयार करने की आज अत्यंत आवश्यकता है। यह भी जरूरी है कि आंगनबाड़ी कार्यकर्त्ता, शिक्षक और सतत शिक्षा केन्द्रों के प्रेरक को एक साथ मिल बैठकर कार्य करने के लिए तैयार किया जाये। यदि तीनों एजेन्सी एकीकृत स्वरूप में कार्य करने लगे तो संभव है स्कूल की कार्यावधि 12 से 14 घंटे प्रतिदिन तक हो सकती है साथ ही समुदाय के सभी वर्गों के लिए स्कूल में प्रवेश और सीखने के अवसर बढ़ सकते हैं। अभी आलम यह है कि कृषि कार्यों में जुटे परिवारों के बच्चों के लिए स्कूल कार्यालयी समयावधि तक खुलने के कारण

अनुपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। स्कूल की समयावधि सरकारी नियंत्रण में होने के कारण बच्चों की उपस्थिति और सीखने का समय कमतर होता जा रहा है। विद्यालयी उम्र से अधिक उम्र वाले किशोरों, युवाओं, महिलाओं और कामकाजी लोगों के लिए स्कूल के दरवाजे बंद ही हैं। विद्यालय समाज की लघुतक इकाई के रूप में ''सामाजिक शिक्षण केन्द्र'' के रूप कार्य कर सकते हैं। इस परिकल्पना को साकार करने की दिशा में पहल किए जाने का दायित्व स्थानीय ''पालक शिक्षक संघ'' पूरा कर सकते हैं। ''सभी के लिए शिक्षा'' का स्वप्न पूरा करने के लिए भी अब विद्यालय को केवल बच्चों की शिक्षा-व्यवस्था की अपेक्षा सम्पूर्ण समाज को शिक्षित करने की दिशा में सक्रिय करना होगा। जिस सरकार और समाज में चिकित्सालय और थाने (कोतवाली) दिन-रात खुले रहते हैं उसमें यह सर्वाधिक आवश्यक है कि विद्यालय कम से कम 12-16 घंटे जरूर खुलें।

शिक्षक-छात्र अनुपात ठीक हो

हमें स्कूलों में शैक्षणिक सुधार के लिए शिक्षकों की भूमिका को विशेष महत्वपूर्ण मानना होगा। पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रम के अनुरूप प्रभावी शिक्षण, शिक्षकों की योग्यता, सक्रियता और पढ़ाने के कौशल पर निर्भर है। एक शिक्षक, एक साथ कितनी कक्षाओं के कितने बच्चों को भली-भांति पढ़ा सकेगा, इस बारे में गंभीरतापूर्वक विचार करने की जरूरत है। अभी शिक्षक-छात्र अनुपात के साथ-साथ शिक्षक कक्षा अनुपात अव्यवहारिक है। एक शिक्षक अधिकतम 20 बच्चों को ही ठीक प्रकार पढ़ा सकता है (और वे भी एक समान स्तर के हों)। अभी व्यवस्था यह है कि एक शिक्षक 40 बच्चों को (और वे भी अलग-अलग स्तरों के हैं) पढ़ायेगा। अनेक स्कूलों में तो एक साथ 70-80 बच्चों से भी अधिक बच्चों को एक ही शिक्षक को पढ़ाना पड़ रहा है। एक परिस्थिति में शिक्षक, किंकर्तव्यविमूढ़ हो कर मात्र बच्चों को घेरे रह पाते हैं क्योंकि पढ़ाई तो संभव ही नहीं। शिक्षक बच्चों के मददगार बनें, इस हेतु शिक्षक-छात्र अनुपात को व्यवहारिक बनाना होगा।

प्रशिक्षण शिक्षण और परीक्षण की प्रक्रिया में सुधार हो

स्कूली शिक्षा में सुधार के लिए शिक्षण विधियों, प्रशिक्षण और परीक्षण की विधियों में सुधार करने की जरूरत है। अभी शिक्षण की विधियां राज्य स्तर से तय की जाती हैं। कक्षागत शिक्षण कौशलों को या तो नकार दिया जाता है या उन्हें परिस्थितिजन्य

मान लिया जाता है। शिक्षकों के प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी महज रस्म अदायगी के तौर पर चल रहा है। अच्छे प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण का दायित्व कर्तव्यनिष्ठ, योग्य और क्षमतावान प्रशिक्षकों को सौंपा जाना चाहिए। अभी आलम यह है कि प्रशिक्षण संस्थानों में मौज मस्ती और आरामतलवी के लिए लोग नियुक्त हो रहे हैं, इसीलिए प्रशिक्षण संस्थान शिक्षकों के प्रभावी शिक्षण की प्रक्रिया एवं बच्चों की क्षमता का वास्तविक मूल्यांकन नहीं कर पा रही है। बच्चे केवल रटंत आधार पर उत्तीर्ण किये जा रहे हैं, जिससे उनका व्यवहारिक पक्ष कमजोर होता जा रहा है। ऐसी परीक्षा आधारित शिक्षा समाज के लिए अनुपयोगी है।

बच्चों की समझ, कौशल या ज्ञान को क्रियात्मक रूप में लागू कर पाने की क्षमता का कोई मूल्यांकन नहीं हो पा रहा है। पुस्तकों में लिखित जानकारी को यथावत रट लेने या प्रश्न बैंकों के सहारे उत्तर पुस्तिकाओं में नकल करने वाली परीक्षा प्रणाली से निर्मित अंकतालिकाओं के सहारे मिलने वाली सरकारी नौकरियों एवं अगली कक्षाओं में प्रवेश देने आदि की प्रक्रिया को भी संशोधित किया जाना चाहिए। शिक्षकों के प्रशिक्षण को प्रभावी बनाने, शिक्षण में नवाचारी पद्धतियां विकसित करने सहित परीक्षण (मूल्यांकन) की व्यापक प्रविधियां तय कर उन्हें व्यवहारिक स्वरूप में लागू करने की दिशा में कारगर कदम उठाने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हर प्रदेश में एक ''शैक्षिक संदर्भ एवं स्रोत केन्द्र'' विकसित किया जाये।

शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगरमूलक परियोजनाओं को एकीकृत कर समेकित ढ़ंग से क्रियान्वित किया जाये

वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में अनेक संस्थायें कार्यरत हैं। इसी प्रकार रोजगार और सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए भी शासकीय स्तर पर संस्थायें, परियोजनायें और कार्यक्रम लागू किये गये हैं। मानव विकास की बुनियादी सूचकांक होते हुए भी इनमें तालमेल न होने के कारण इनकी गति अपेक्षित नहीं हैं। धन की गरीबी से ज्ञान की गरीबी का विशेष संबंध है। दूरस्थ ग्रामीण अंचलों में ज्ञान की गरीबी पसरी हुई है। सुविधाओं के अभाव में वे अक्सर बीमार पड़े रहते हैं। जानकारी के अभाव में वे संसाधनों का उपयोग नहीं कर पाते। अंततः अनेक परियोजनाओं के बावजूद उनकी प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक चिकित्सा और बुनियादी रोजगार की प्रक्रियायें बाधित होती हैं। आये दिन यह अत्य उद्घाटित होता रहता है कि शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य के

लिए कार्यरत संस्थायें और लोग व्यापक भ्रष्टाचार में संलिप्त हैं। राष्ट्रीय स्तर पर जारी रोजगार गारंटी योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन और सर्व शिक्षा अभियान के परिणामों से सब भलीभांति परिचित हैं। मध्यप्रदेश के संदर्भ में विगत वर्ष डॉ. योगीराज शर्मा प्रकरण उजागर होने से थोड़ी सी हलचल हुई थी लेकिन इसके बावजूद लोग सतर्क नहीं हुए हैं। अब यह समय आ गया है कि शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के लिए लागू परियोजनाओं को समेकित ढ़ंग से किसी सुनिश्चित क्षेत्र में लागू कर परिणामों की समीक्षा की जाये और अच्छे परिणाम आने पर उन्हें पूरे देश भर में लागू कराया जाये। इस प्रकार हम अपने संसाधनों और मानवीय क्षमताओं का बेहतर उपयोग कर सकेंगे जिससे शिक्षा के गुणात्मक विकास की संभावनायें बढ़ेगी।

पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकों की रचना में सुधार हो

अभी वास्तव में यह ठीक प्रकार तय ही नहीं है कि किस आयु वर्ग के बच्चों को कितना सिखाया जा सकता है और सिखाने के लिए न्यूनतम कितने साधनों और सुविधाओं की आवश्यकता होगी। नई शिक्षा नीति 1986 लागू होने के बाद न्यूनतम अधिगम स्तरों को आधार मानकर पाठ्यपुस्तकें और पाठ्यक्रम तो लगातार बदले गये हैं, लेकिन उनके अनुरूप सुविधाओं और साधनों की पूर्ति नहीं की गई। शैक्षिक योजनायें ऑपरेशन ब्लेकबोर्ड शिक्षक समाख्या और सीखना-सिखाना पैकेज जैसी महत्वाकांक्षी योजना और कार्यक्रम लापरवाह अधिकारियों की मनमानी कार्यशैली और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गईं। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) के अंतर्गत लागू सीखना-सिखाना पैकेज कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखा पाया। हमारी यह सोच ही बेहद खतरनाक है कि पाठ्यपुस्तकों के जरिये हम भाषायी एवं गणितीय कौशलों और पर्यावरणीय ज्ञान को ठीक प्रकार विकसित कर सकते हैं। यथार्थ में पाठ्यपुस्तकें पढ़ाई का एक छोटा साधन मात्र होती है साध्य नहीं। किन्तु पूरी शैक्षिक प्रक्रिया में पाठ्यपुस्तकों को ही शिक्षण का पर्याय मान लिया गया है। पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की रचना करते समय छोटे बच्चों की भावना और क्षमताओं पर गौर किये बगैर तथाकथित शिक्षा विशेषज्ञों की राय से यह तय कर लिया जाता है कि किस स्तर तक के बच्चे कितना सीखेंगे। कक्षाओं पर केन्द्रित पाठ्यपुस्तकें और पाठ्यक्रम को श्रेणीबद्ध रूप में निर्धारित करना ही खतरनाक है। बच्चों की सीखने की क्षमता पर उनके पारिवारिक और सामाजिक वातावरण का भी विशेष प्रभाव पड़ता है, अत: सभी क्षेत्रों में एक समान पाठ्यक्रम और एक जैसी पाठ्य पुस्तकें लागू करना बच्चों के साथ नाइन्साफी है।

शैक्षिक उद्देश्यों को पुनरीक्षित किया जाये

स्कूली शिक्षा में सुधार की बातें करते समय हमें वर्तमान शैक्षिक उद्देश्यों को भी पुनरीक्षित करना होगा। शिक्षा, महज परीक्षा पास करने या नौकरी/रोजगार पाने के साधन नहीं है, अपितु यह विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास, अंतर्निहित क्षमताओं का विकास करने और स्वस्थ्य जीवन निर्माण के लिए भी जरूरी है। जब तक यह मान्यता सार्वजनिक नहीं की जाती, तब तक शैक्षिक प्रक्रिया में सुधार संभव नहीं। शिक्षा प्रत्येक बच्चे को श्रेष्ठ इंसान बनने की ओर प्रवृत्त करे, तभी वह सार्थक सिद्ध हो सकती है। कहा भी गया है ''सा विद्या या विमुक्तये''। अभी खूब पढ़े-लिखे और गैर पढ़े-लिखे व्यक्ति के आचरण और चरित्र में कोई खास अंतर दिखाई नहीं देता, उल्टे पढ़-लिख लेने के बाद तो व्यक्ति श्रम से जी चुराने लगता है, और अनेक प्रकार के दुराचरणों में लिप्त हो जाता है। यह स्थिति हमारी वर्तमान शैक्षिक पद्धति की असफलता सिद्ध करती है। यह जरूरी है कि शिक्षा के उद्देश्यों को सामयिक रूप से परिभाषित कर पुनरीक्षित किया जाये।

शिक्षकों को ''शिक्षक'' के रूप में प्रभावी कार्य प्रदर्शन के अवसर दिए जायें

विगत वर्ष 1995 से म.प्र. में शिक्षकों के पद संविदा पर भर्ती करने के उद्देश्य से मृत संवर्ग घोषित कर नाना प्रकार के नाम से शिक्षकों की पदपूर्ति की गई। समान कार्य के लिए समान कार्य परिस्थितियां और समान वेतन की अनुशंसा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 में और मानव अधिकार घोषणा पत्र के अनुच्छेद 21, 22 और 23 में वर्णित होते हुए भी तत्कालीन सरकार (शासन और प्रशासन) ने पैरा शिक्षकों की भर्ती की। स्कूल के बदले वैकल्पिक शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा गारंटी शालाओं के रूप में स्थापना कर कम खर्चे में काम चलाऊ शिक्षा के नाम पर शोषणकारी व्यवस्था लागू करके भी राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार प्राप्त कर लिया। अब नाना नामधारी स्कूलों और शिक्षकों को नियमित करने के लिए संघर्ष जारी है। आये दिन धरना, प्रदर्शन और आंदोलनों से बच्चों की पढ़ाई बाधित हो रही है। एक ही विद्यालय में अनेक प्रकार के शिक्षकों के पदस्थ रहते सभी के मन में घोषित-अघोषित तनावों के कारण भी पढ़ाई में व्यवधान हो रहा है। इस परिस्थिति को गंभीरता से समझे बगैर और परिस्थितियों में सुधार किए बगैर भला शिक्षण में सुधार कैसे होगा? शासन

को इस परिस्थिति में सुधार के लिए सभी शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत शिक्षकों के लिए एक समान कार्यनीति, समान पदनाम, समान वेतनमान देने की नीति तय कर एक निश्चित कार्यावधि उपरांत पदोन्नति देने का भी ऐलान करना चाहिए।

श्रेष्ठतम शैक्षिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जाये

स्कूली शिक्षा के सुधार के लिए कार्य कर रहे अनेक गैर-सरकारी संगठनों/शासकीय शिक्षण संस्थानों की मौजूदगी के बावजूद यह विचारणीय है कि आखिर वे कौन से कारण हैं जिनसे हमारी शिक्षा पद्धति में सुधार या परिवर्तन नहीं हो पता? हमारे देश में आजादी के बाद से लेकर शिक्षा के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन किये गये, लेकिन व्यवस्था में सुधार की बजाय व्यवस्थायें चौपट होती नजर आती हैं। सरकारी तंत्र के अंदरूनी अन्तर्विरोधों के कारण शिक्षा व्यवस्था जड़ता की शिकार है जिसमें सुधार या बदलाव के लिए सामाजिक स्तर पर व्यापक शैक्षिक क्रांति की आवश्यकता है। सरकारी तंत्र की विवशता यह हो सकती हे कि इसमें एक साथ कई विरोधी लक्ष्यों को पूरा करने के प्रयास किये जाते हैं, इसी कारण कोई लक्ष्य पूरा नहीं होता। दुर्भाग्य से शैक्षिक परिवर्तन के लिए लागू परियोजनाओं में तिकड़म लगाकर निर्णायक पदों पर ऐसे लोग पदासीन हो जाते हैं, जिनके मन में परिवर्तन की ललक ही नहीं होती। वे तो मात्र अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति में ही लगे रहते हैं, और जमीनी स्तर पर कार्यरत कार्यकर्ताओं का मनोबल तोड़ते रहते हैं। ऐसी स्थिति में शैक्षिक परिवर्तन के लिए जमीनी कार्यकर्ताओं (शिक्षकों) का मनोबल बनाये रखने और उत्साहपूर्वक कार्य करने की इच्छाशक्ति पैदा करने के लिए संगठित प्रयास करने होंगे। अभी शिक्षा व्यवस्था में बालकों और पालकों (अभिभावकों) की भागीदारी न्यूनतम है, इसलिए सभी शैक्षिक कार्यक्रम असफल हो जाते हैं। स्कूलों में भी जिस प्रकार समर्पित स्वयंसेवकों की आवश्यकता है, उनके स्थान पर अयोग्य, गैर जिम्मेदार और भ्रष्टाचार के माध्यम से नियुक्त हुए लोग काम कर रहे हैं। सच्चाई यह भी है कि शिक्षकों को समूची शिक्षा व्यवस्था में सर्वाधिक हेय और उपेक्षित कर निचली सीढ़ी पर बिठाया गया है। उन्हें महज सरकारी नौकर मानकर उनके शिक्षण कौशलों, क्षमताओं, कर्मठता और गुणों को विकसित करने की बजाय भरपूर उपेक्षा की जा रही है। अत: यह आवश्यक है कि श्रेष्ठतम शैक्षिक कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जानी चाहिए।

कार्यरत शिक्षकों को मनोबल बढ़ाया जाये

समूची दुनियाँ के सभी विकसित और विकासशील देशों में प्राथमिक शालाओं के शिक्षकों को आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और प्रशासनिक दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है। साथ ही ऐसी शिक्षा नीति बनाई जाती है जिसमें उनका मनोबल सदैव ऊँचा बना रहे। लेकिन हमारे देश में सर्वाधिक संख्या होने के बावजूद प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की घोर उपेक्षा के कारण वे सदैव असंतुष्ट बने रहते हैं। इस असंतुष्टि के कारण उनकी खराब मन:स्थिति और तटस्थता के कारण से सभी शैक्षिक कार्यक्रम परिणामहीन रह जाते हैं। गांधीजी की मान्यता थी कि ''विद्यार्थी के लिए उसका अध्यापक ही उसकी पाठ्यपुस्तक होता है'' - हम इस महत्वपूर्ण विचार की लगातार अवहेलना कर रहे हैं। दु:खदायी स्थिति यह भी है कि अभी जो कुछ भी बच्चों को कक्षाओं में पढ़ाया-सिखाया जा रहा है, दैनंदिन कार्यव्यवहार में उसके ठीक विपरीत कार्य हो रहे हैं। यह कथनी और करनी का भेद भी बच्चों के मन में तरह-तरह के भ्रम पैदा करता है। जब तक अनुभव जन्य ज्ञान, और कौशलों को महत्व नहीं दिया जायेगा तब तक ''बालकेन्द्रित शिक्षण'' की प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती है। बाल केन्द्रित शिक्षण के लिए कार्यरत शिक्षकों की दक्षता और मनोबल बढ़ाये जाने की आवश्यकता है।

मित्र (MITRA) परियोजना का सृजन किया जाये

अभी शिक्षकों के अभिप्रेरण के अभाव में हतोत्साहित शिक्षक कुछ भी नया कर पाने में असमर्थ हैं। विभागीय अधिकारियों की प्रताड़ना से व्यथित शिक्षक आखिर क्या करें? जिन सामुदायिक संगठनों से उन्हें मदद की दरकरार थी वे भी अब शिक्षकों के विरूद्ध कार्यवाही और शिकायतों के दौर में हैं। शिक्षक संगठनों का नेतृत्व ऐसे हाथों में हैं जो अपने निहित स्वार्थी भावनाओं और राजनीतिक ढंग के कार्य करने के आदी हैं। इन परिस्थितियों में शिक्षकों को अभिप्रेरित करने का दायित्व मूलत: उनके सेवारत प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी संगठनों/प्रशिक्षण संस्थानों पर था, लेकिन वे अपनी प्रशासकीय कार्यशैली के नियंत्रणाधीन हैं यह आवश्यक है कि अब शिक्षकों को उनके व्यक्तित्व विकास की प्रक्रियाओं सहित ऐसे प्रशिक्षण संस्थानों में भेजा जाये जहां उन्हें अपने अंदर झांकने सहित स्वयं को कुछ बेहतर कर गुजरने की प्रेरणा मिल सके। इस प्रशिक्षण उपरांत उन्हें कार्यरत स्थलों पर ''ऑन द जॉब सपोर्ट'' के रूप में ऐसे सहयोगी

दिए जायें जो उनकी वास्तविक मदद करें। यद्यपि जनशिक्षा अधिनियम में जनशिक्षा केन्द्र/जनपथ शिक्षा केन्द्र/जिला शिक्षा केन्द्र/राज्य शिक्षा केन्द्र की स्थापना इसी आशय से की गई थी लेकिन वे भी अन्य शिक्षा कार्यालयों की भांति बनकर रह गये हैं। इन संस्थाओं में भी वे ही लोग घुस आये हैं जो शिक्षकों के विरूद्ध काम करने वाली मानसिकता से ग्रसित हैं। किसी ऐसी संस्था को इस दिशा में काम करने की जरूरत है जो सामाजिक बदलाव के लिए व्यापक दूरदृष्टि और दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ काम करने के लिए सहमत हो और उसके पास स्वयं के संसाधन भी उपलब्ध हों।

शैक्षिक सुधारों को लागू करने में संस्था प्रधानों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाये

शिक्षा के क्षेत्र में आजकल युद्ध जैसी परस्पर विरोधी शक्तियां काम करती नजर आती हैं। युद्ध में किसी रक्षा सैनिक/सैनिक अधिकारी के समक्ष अपना लक्ष्य और दुश्मन स्पष्ट होते हैं, लड़ाई का परिणाम भी शीघ्र सामने आ जाता है लेकिन शैक्षिक क्षेत्र में शिक्षकों/शिक्षा अधिकारियों के समक्ष न तो लक्ष्य स्पष्ट हो पा रहा है और न इसके परिणाम ही नजर आ रहे हैं। परिणामों की भयावहता के मद्देनजर हम इस क्षेत्र के शत्रुओं को भी नहीं पहचान पा रहे हैं।

यदि रक्षा क्षेत्र के संघर्ष की तुलना शिक्षायी क्षेत्र से करें तो सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका सैनिकों की भांति शिक्षकों की तथा उनके प्रारंभिक निदेशक के रूप में प्रधानाध्यापकों की है। अत्यन्त चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में प्रधानाध्यापक/प्राचार्यों को स्कूल का नेतृत्व करना दबावपूर्ण महसूस हो रहा है। विद्यालयों को अव्यवस्था से बचाने के लिए नेतृत्व को गतिशील और समर्थ होना चाहिए जिसे वह अपनी पारम्परिक भूमिका में बदलाव लाकर विभिन्न कौशल अर्जित करके प्राप्त कर सकता है परन्तु प्रधानाध्यापकों एवं प्राचार्यों की वर्तमान चयन प्रक्रिया इतनी रूढ़ और परम्परागत बनकर रह गई है कि इसमें गतिशीलता और समर्थ बनने की प्रक्रिया गौण हो जाती है। ऐन–केन प्रकारेण समय गुजारते रहने की प्रवृत्ति से ग्रसित नेतृत्व के कारण विद्यालयों के अध्ययन/अध्यापन की स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही है। कूटनीतिक प्रबंधन, उच्चतर शैक्षिक विकास दल का नेतृत्व एवं सामाजिक बाह्य संबंधों और बुनियादी कौशलों का विकास वर्तमान शैक्षिक नेतृत्व की सर्वाधिक आवश्यकता है। निरंतर बदलते माहौल

में स्कूल का प्रबंधन ज्यादा जटिल हो गया है। सामाजिक परिवर्तन की रफ्तार लगातार बढ़ रही है जिससे स्कूल प्रबंधन की आवश्यकताएं और औचित्य अब पारम्परिक प्रशासनिक रीति-नीति से संभव नहीं है। परिस्थितियों की जटिलता के कारण ही शैक्षिक कार्यकर्ताओं का मनोबल टूट रहा है। लोगों के मन में भी स्कूलों के प्रति अविश्वास और निराशा बढ़ रही है।

आज जरूरत इस बात की है कि किसी प्रकार पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में परिवर्तन लाने के लिए विद्यालय प्रशासन, शिक्षकों और शैक्षिक कार्यक्रमों में तालमेल बनाया जाये। श्रेष्ठ कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि उनका मनोबल न टूटे। समुदाय की शैक्षिक आवश्यकताओं को पहचान कर उनकी जरूरतों के अनुरूप निर्णय लेते हुए ऐसा वातावरण बनाने की आवश्यकता है जिसमें व्यवसायिक योग्यता में वृद्धि सुनिश्चित हो। गोपनीयता बढ़ाने और अधिकारों में वृद्धि करने की बजाय संप्रेषण, सहभागिता, सूचना और मूल्यांकन, मान्यता और पुरस्कार की आज बेहद आवश्यकता है। स्पष्टत: हमें स्कूल प्रबंधन के लिए सक्रिय कार्यदलों का पुनर्गठन करना होगा जो चुनौतीपूर्ण कार्य है।

विचारणीय यह है कि हम वर्तमान जरूरतों की पूर्ति के लिए क्या करें? शैक्षिक प्रबंधन उत्तरदायी बनें और सभी अपनी-अपनी भूमिका के बारे में सचेत एवं अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध होकर कर्तव्यों-दायित्वों में तालमेल बनायें, इसके लिए योजनायें संस्थागत आधार पर बनानी होगी। स्कूल संगठन के पदाधिकारियों को विद्यार्थियों और उनके माता-पिता से जुड़ना होगा। अपने पड़ोसी विद्यालयों के साथ-साथ अन्य विभागों से भी सहायता लेने एवं चुनौतियां स्वीकार करते हुए लक्ष्य आधारित कार्यक्रम तय करने होंगे। *मानवीय संसाधनों को बेहतर उपयोग करने के लिए पद की बजाय व्यक्ति की सामर्थ्य, कार्यकुशलता और योग्यता को महत्व देना होगा।* निर्णय प्रक्रिया में शिक्षकों की सहभागिता बढ़ाते हुए उन्हें कार्य के प्रति प्रोत्साहित करना होगा। शिक्षकों की कठिनाईयों और समस्याओं के प्रति तटस्थता की बजाय संवेदनशील रहकर उनका त्वरित निराकरण करने की नीति तय करनी होगी। मूलत: सारी व्यवस्था कक्षा-कक्ष के कार्यों को प्रभावी और परिणाम मूलक बनाने के लिए की जानी चाहिए। शिक्षा के प्रशासन एवं प्रबंधन में उत्तरदायी भूमिका निभाने वाले संस्था प्रधानों की नियुक्ति और प्रशिक्षण हेतु शिक्षा विभाग एवं शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे अन्य संगठनों को शीघ्र कारगर

कदम उठाना चाहिए। संस्था प्रधानों की भूमिका को सशक्त बनाये बगैर शिक्षा में सुधार की संभावनायें अत्यन्त क्षीण रहेंगी।

प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय व्यवस्थागत सुधारों के संबंध में प्रभावी कार्यवाही की जाए

मध्य प्रदेश में सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत शैक्षिक विकास की प्रक्रियाएं निरन्तर गतिशील हुई हैं। सर्व शिक्षा अभियान-2 (सक्सेस-2) को प्रभावी और परिणाममूलक बनाने हेतु जरूरी है कि अहम उपलब्ध समय साधन और श्रम का सार्थक सदुपयोग करते हुए प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय व्यवस्थागत सुधारों की ओर ध्यान दें। इस हेतु जरूरी है कि राज्य स्तर पर शिक्षा विभागीय प्रशासनिक अमले को प्रशासन एवं प्रबंधन प्रक्रिया में पारंगत बनाने हेतु ''राज्य शैक्षिक प्रबंधन और प्रशिक्षण संस्थान'' (सीमेट) को गतिशील बनाया जाये। सभी स्तरों पर कार्यरत शैक्षिक कार्यकर्ताओं, प्रशासनिक अधिकारियों और निगरानीकर्ताओं (मॉनीटर्स) को अपने-अपने क्षेत्र में प्रभावी प्रदर्शन और परिणाम मूलक ढ़ंग से कार्य करने के लिए तैयार (सक्षम) कर प्रतिबद्ध और तत्पर बनाने की जरूरत है। विगत वर्ष 2006-07 के दौरान राज्य शिक्षा केन्द्र भोपाल द्वारा एक ऐसे ही प्रयास के तहत CRISP क्रिस्प संस्था के साथ मिलकर ''परिणाम मूलक मॉनीटरिंग'' पर केन्द्रित प्रशिक्षण का आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण केन्द्र में सभी विकासखंडों के लिए मास्टर्स ट्रेनर्स तैयार कराये गये थे। लगभग 6 माह की अवधि और करोड़ों रुपये व्यय होने के बाद इस कार्यक्रम का प्रभावी क्रियान्वयन न हो पाने के कारण हम जैसे परिणामों की उम्मीद कर रहे थे वैसे संभव नहीं हो पाये।

शिक्षा प्रशासन की यह नियति बन गई है कि इसमें उच्च शिक्षा स्तर पर भी स्थायित्व नहीं हैं। भारतीय शिक्षा सेवा के अभाव में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के हाथ कैद हो गये शिक्षा प्रशासन की असफलता निरंतर यह सिद्ध करती है कि हमें उपयुक्त बदलाव की ओर शीघ्र कदम उठाना चाहिए। आखिर क्या कारण है कि राष्ट्रीय स्तर पर लागू राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 और कार्ययोजना 1992 में स्वीकृत अखिल भारतीय शिक्षा सेवा की स्थापना आज तक नहीं हो पाई है। लगभग हर स्तर पर निर्णायक पदों पर नियुक्त प्रशासनिक सेवा के अधिकारी शिक्षा क्षेत्र में आ रही गिरावट और

असफलता के लिए उत्तरदायी नहीं माने जाते। हां, किसी छोटी सी सफलता का श्रेय अवश्य हासिल करते नजर आते हैं।

शिक्षा में सुधार के लिए कार्यरत शिक्षकों को समर्थन देने की दृष्टि से यह अत्यंत आवश्यक है कि शिक्षा प्रबंधन और प्रशासन को सुधारा जाये। मध्य प्रदेश शासन द्वारा वर्ष 2003 में गठित ''स्पेशल टास्क फोर्स'' की अनुशंसाओं को लागू किए जाने की भी आज महत्ती आवश्यकता है जो अब एक दस्तावेज में सिमट कर रह गई है। मध्य प्रदेश देशभर में सर्वप्रथम जन शिक्षा अधिनियम तैयार कर लागू करने वाले प्रदेश के रूप में है। क्रियान्वयन के स्तर पर जरूर कार्य अभी शेष है जिसमें प्रमुख कार्य सभी स्तरों पर कार्यरत शिक्षा केन्द्रों के संचालन हेतु मैनुअल (संचालन मार्गदर्शिकाओं) का सृजन और उन्हें लागू करना है, ताकि कार्यरत स्टाफ बेहतर प्रदर्शन कर सकें। प्रदेश के सभी जनशिक्षा केन्द्रों को प्रबंधन और प्रशासन के प्रति उत्तरदायी भूमिका सौंपते हुए जनशिक्षा केन्द्र प्रभारी को अपहरण वितरण अधिकार दिये जाने चाहिए। प्रदेश के भी पुरस्कृत एवं उत्कृष्ट कार्य करने वाले क्षमतावान शिक्षकों को अन्य विभागों की भांति विभागीय परीक्षा के माध्यम से उच्च संस्थाओं/उच्च पदों पर कार्य करने हेतु अवसर दिये जाने चाहिए। यह अत्यंत आवश्यक है कि समग्रत: शिक्षा व्यवस्था को नियंत्रित किये जाने हेतु राज्य की शिक्षा नीति तैयार की जानी चाहिए। कार्यरत शिक्षकों की दक्षता का सम्मान और उनकी कार्यदक्षता का उपयोग किये जाने की दृष्टि से विभागीय दक्षता परीक्षा का आयोजन कर सभी को प्रन्नोत किया जाना चाहिए। शैक्षिक प्रबंध ान व प्रशासन से जुड़े पदों की पूर्ति हेतु एक विशेष चयन प्रक्रिया निर्धारित करते हुए राज्य शिक्षा सेवा स्थापित की जानी चाहिए। अखिल भारतीय स्तर पर शैक्षिक सुधार के लिए अखिल भारतीय शिक्षा सेवा (IES) की स्थापना आवश्यक है।

अंतत: शैक्षिक सुधार के लिए अब हमें विचार करने की बजाय कर्तव्य की ओर बढ़ना होगा।

''बहुत हो चुका विचार विमर्श, बहुत दे दिया एक दूसरे को परामर्श,
वर्षों से यही होता आया है, एक ने दूसरे पर इल्जाम लगाया है,
क्या समय पर सही कदम उठाया है?''

आज शिक्षा के क्षेत्र में वास्तविक सुधार की दृष्टि से शीघ्र सार्थक कदम उठाते हुए हमें ऐसी शिक्षण पद्धति और कार्यक्रम विकसित करने होंगे जो बच्चों के मन में श्रम

के प्रति निष्ठा पैदा करे। समग्रत: एक ऐसा प्रभावी शैक्षिक कार्यक्रम बनाना होगा जिसमें–

1. पाठ्यक्रम लचीला और गतिविधि आधारित हो, साथ ही बच्चों की ग्रहण क्षमता के अनुरूप भी।
2. कक्षागत पाठ्य योजनायें, स्वयं शिक्षकों द्वारा तैयार की जायें और उन्हें पूरा किया जाये।
3. राज्य की शिक्षा नीति निर्धारण में शिक्षाविदों और कार्यरत शिक्षकों को वास्तव में सहभागी बना कर सभी के विचारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये।
4. जन भागीदारी समितियां (पालक शिक्षक संघ) प्रबंधन का दायित्व स्वीकारे – शैक्षिक प्रशासन तंत्र भी शालाओं में अनावश्यक हस्तक्षेप न कर। शिक्षण का अधिकार शिक्षकों को वास्तव में सौंपा जाये।
5. शिक्षण विधियों में परिवर्तन करने का अधिकार शिक्षकों को हो, प्रशासनिक अधिकारियों को नहीं।
6. कक्षाओं में शिक्षक–छात्र अनुपात ठीक किया जाय, साथ ही पर्याप्त मात्रा में शैक्षिक सामग्री की पूर्ति और शिक्षकों की भर्ती की जाये।
7. पाठ्यपुस्तकों की रचना स्थापित रचनाकारों की बजाय शिक्षकों और शिक्षा विशेषज्ञों के माध्यम से की जानी चाहिए, जो शैक्षिक दृष्टि से उपयुक्त हो।
8. शैक्षिक सुधारों को लागू करने की संस्था प्रधानों और शिक्षकों की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाये।
9. शिक्षकों के सहयोग हेतु ''राज्य शिक्षक संदर्भ और स्रोत केन्द्र'' स्थापित किए जायें।
10. विद्यालयों को सामुदायिक शिक्षण के लिए उत्तरदायी बनाया जाये।

उपर्युक्त सुझावों को लागू करने के उपरांत संभव है कि शिक्षा में किंचित सुधार हो सके।

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

विभिन्न एशियाई देशों में स्त्री शिक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन

श्रुति आनंद*

वैश्वीकरण, सूचना क्रांति तथा 21 वीं सदी की ओर बढ़ने के नारे ने विश्व को एक नई शक्ति और स्फूर्ति दी है। इस आधुनिक युग में प्रत्येक को शिक्षा, स्वास्थ, भोजन और रहने के लिए घर प्राप्त हो सके यह प्रयास निरन्तर किया जा रहा है। विश्व में विकसित तथा विकासशील देशों की अपनी-अपनी भूमिका भी दिखाई दे रही है। जहां विकसित देश अपनी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए विकासशील देशों को एक बाजार के रूप में देख रहे हैं वही विकासशील देश अपनी छोटी-छोटी समस्याओं का निराकरण करते हुए विकसित होने का सपना देख रहे हैं।

विश्व के सभी देशों में नई क्रांतियों के पश्चात् वहां की सामाजिक रूपरेखा में भी परिवर्तन हुआ। व्यक्तियों की प्रति व्यक्ति आय बढ़ी, उनके जीवन स्तर में सुधार भी हुआ। व्यक्ति ने धीरे-धीरे इन परिवर्तनों के अनुसार अपनी जीवन शैली में भी परिवर्तन किया। इन परिवर्तनों में उनके मूल्य एवम् नैतिकता में भी स्वत: ही परिवर्तन होता चला गया जिसके कारण नए सोच वाले समाज का उद्भव हुआ।

पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन होना भी प्रारंभ हुआ जो सुखद भी है, परंतु जिस तीव्रता से सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन हुए उस अनुपात में औरतों की स्थिति में परिवर्तन अत्यंत अल्प ही रहा। इसका एक मुख्य कारण महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान न दिया जाना था। कालान्तर में स्त्री शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाने लगा। भारत, भूटान, बांग्लादेश, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान, म्यांमार और श्रीलंका

* प्रवक्ता शिक्षक शिक्षा संकाय, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, जमुनीपुर कोटवा, झूंसी इलाहाबाद।

आदि ऐसे देशों में भी यह परिवर्तन हुआ परंतु धीरे, जो आज भी जनसंख्या का लगभग 50 प्रतिशत ही है।

महिला साक्षरता एवं जनसंख्या अवलोकन

किसी भी देश का विकास उस देश की सार्थक जनसंख्या के माध्यम से होता है। यह सार्थक जनसंख्या वह होती है जो शिक्षित हो तथा देश के विकास में सहायक है। जिस प्रकार भोजन, शुद्ध हवा, जल मनुष्य का अधिकार है उसी प्रकार शिक्षा भी व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकर है परंतु यह अधिकार आज भी महिलाओं को सुचारू रूप से नहीं प्राप्त हुए हैं। आज भी ऐसे देश हैं जहां महिलाओं की शिक्षा पर पूर्णतया ध्यान नहीं दिया जाता या उन्हें औचित्यपरक नहीं माना जाता। शायद यही कारण है कि नामांकन के समय बालिकाओं की संख्या अधिक होती है परंतु पढ़ाई के अंत तक बीच में बालिकाएं पढ़ाई छोड़ देती हैं। विभिन्न देश की जनसंख्या एवम् महिला साक्षरता आदि से यह देखा जा सकता है :

वर्ष (जनगणना)	देश	जनसंख्या	महिला साक्षरता	कुल साक्षरता दर
2007	भारत	1 अरब 7 करोड़	54.16 प्रतिशत	65.38 प्रतिशत
2007	पाकिस्तान	15 करोड़ 18 लाख	35.3 प्रतिशत	48.7 प्रतिशत
2007	बांग्लादेश	13 करोड़ 66 लाख	31.8 प्रतिशत	43 प्रतिशत
2007	नेपाल	2 करोड़ 61 लाख	27.6 प्रतिशत	45.2 प्रतिशत
2007	श्रीलंका	2 करोड़ 4 लाख	90.0 प्रतिशत	92.3 प्रतिशत
2007	मालदीव	3 लाख	97.3 प्रतिशत	97.2 प्रतिशत
2007	भूटान	21 लाख	28.1 प्रतिशत	42.2 प्रतिशत

नोट:-भारत की जनसंख्या तथा साक्षरता दर भारत द्वारा किए गए सर्वेक्षण से प्राप्त की गई है अन्य आकड़े ह्यूमन डेवलपमेंट यू.एन.डी.पी. के 2007 के सर्वेक्षण के आधार पर।

तालिका देखने से यह ज्ञात होता है कि महिला साक्षरता का प्रयास प्रत्येक देश में निरन्तर किया जा रहा है। इस प्रयास का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों की दशा सुधारने एवं

उन्हें राष्ट्रीय मुख्य धारा से जोड़ने में सहायता मिल सके यह माना गया है । किसी राष्ट्र का निर्माण वहां की महिला साक्षरता पर भी आधारित होता है। यदि महिला अशिक्षित होगी तो वह परिवार और समाज में योगदान कुछ कम ही कर पाएगी। प्रत्येक देश की जनसंख्या के अनुपात में आज भी महिला साक्षरता अत्यंत कम है जो शोचनीय है। साक्षरता शब्द भी विभिन्न देशों के आधार पर भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित है जैसे-पाकिस्तान में साक्षरता का अर्थ मात्र कोई एक भाषा का ज्ञान और समाचार पत्र पढ़ लेना है। (इकोनांमिक सर्वे आफ पाकिस्तान 2000-01) भारत में सामान्य लिखना, पढ़ना और सामान्य जोड़ घटाना जानना ही साक्षरता माना गया है। अन्य देशों में लिख कर पढ़ लेना ही साक्षरता की पहचान है।

प्राथमिक स्तर पर शिक्षा हेतु नामांकन एवम् बीच में पढ़ाई छोड़ने के कारण

विभिन्न देशों में यह देखा गया है कि प्राथमिक स्तर पर नामांकन कराने वाले बच्चों की संख्या बहुत अधिक होती है जैसे-

देश	-	**नामांकन दर**	**देश**	-	**नामांकन दर**
भारत	-	55%	बांग्लादेश	-	54%
श्रीलंका	-	65%	मलदीव	-	78%
नेपाल	-	61%	पाकिस्तान	-	37%
भूटान	-	33%			

नोट:- आकड़े ह्यूमन डेवलपमेंट इन्डेक्स यू.एन.डी.पी. के 2007 के सर्वेक्षण के आधार पर।

बीच में पढ़ाई छोड़कर जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक है जिसके कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों का प्रतिशत अत्यन्त कम हो जाता है। नेपाल में कुल नामांकन 61% (2007) है। सन् 2002 के सर्वेक्षण से यह ज्ञात होता है कि प्राथमिक शिक्षा में 44%, माध्यमिक में 41% तथा उच्च शिक्षा में 40.6% ही शिक्षार्थी सम्मिलित हुए। पाकिस्तान (2000-01) की सर्वेक्षण रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करते समय 62.2% नामांकन होता है और क्रमश: यह घट कर उच्च शिक्षा प्राप्त करने का समय 31.6% रह जाता है। इस तरह सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 50% अर्थात 21% पुरुष तथा 29% महिला अशिक्षित रह जाते हैं। (फीड्रल ब्यूरो ऑफ स्टेटिस्टिक्स 1998 और इकोनॉमिक सर्वे आफ पाकिस्तान 2001-02) पाकिस्तान में जनसंख्या बढ़ने की दर 2.16% (2006) है। भारत की जनसंख्या 1 अरब 7 करोड़

(2007) से अधिक जो 1.93 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष बढ़ रही है। यहां साक्षरता दर 65.4% है अर्थात् अभी भी 34.6% जनता निरक्षर है। प्राथमिक शिक्षा में नामांकन का कुल प्रतिशत 83% है जिसमें लड़कियों का प्रतिशत 67% है। यह प्रतिशत माध्यमिक में केवल अनुमानत: 21% रह जाता है तथा उच्च शिक्षा में यह प्रतिशत मात्र 30% है। इस प्रकार बालिकाओं की शिक्षा का प्रतिशत क्रमश: कम होता दिखाई देता है। बांग्लादेश की जनसंख्या 2007 के अनुसार 13 करोड़ 66 लाख है। यहाँ 2-3% की दर से जनसंख्या में वृद्धि हो रही हे। बांग्लादेश में नामांकन दर 54% है परन्तु साक्षरता दर 43% ही रह जाती है। महिला साक्षरता भी घटकर केवल 31.8% ही है। कुछ सर्वेक्षणों में यह 49.5% भी दर्शाया गया है। (बांग्लादेश सरकार द्वारा किये गए सर्वेक्षण के आधार पर) भूटान की जनसंख्या 21 लाख है, नामांकन दर 33% है। यहाँ कुल साक्षरता 42.2% है तथा महिलाओं की साक्षरता 28.1% है। श्रीलंका की जनसंख्या 2 करोड़ 4 लाख है यहाँ पर नामांकन 65% की दर से दिखाई देता है। यहाँ नामांकन के अनुसार महिला साक्षरता 90% तथा कुल साक्षरता 92.3% प्राप्त हुई है जो प्रेरणादयक है। मालदीव एक ऐसा देश है जहाँ सर्वाधिक नामांकन तथा सर्वाधिक साक्षरता दर प्राप्त है। 3 लाख की जनसंख्या वाले देश में कुल साक्षरता दर 97.2% है तथा महिला साक्षरता 97.3% है। यहाँ नामांकन दर 78% है। इस प्रकार इन आंकड़ों को देखने से यह ज्ञात होता है कि महिलाओं की शिक्षा के प्रयास निरन्तर किए जा रहे हैं जो सराहनीय है। जिन देशों की जनसंख्या कम है जो थोड़े भी जागरूक है वहाँ शिक्षा की व्यवस्था महिलाओं के लिए उत्तम है।

नामांकन अधिक तथा साक्षरता की दर कम एवं महिलाओं की साक्षरता दर और अधिक कम होने के कारणों के विषय में यह ज्ञात होता है कि अध्ययन के समय बीच में ही किन्ही कारणों से बालिकाओं की पढ़ाई छूट जाती है। इसके भी विभिन्न कारण दृष्टिगत हाते हैं। जैसे–

- बालिकाओं की शिक्षा को लेकर अनेक भ्रान्तियों का होना, जैसे– बांग्लादेश में, जो निम्न वर्गीय परिवार है उनका मानना है कि पढ़ी लिखी लड़कियां स्वभावत: अत्यन्त कठोर होती हैं तथा पारिवारिक जिम्मेदारी के प्रति असंवेदनशील होती हैं (खान सलमा 1988)। भारत में बालिकाओं को दूसरे की सम्पत्ति माना जाता है जिसके कारण उस पर धन का त्याग करना उचित नहीं है, यह सोचा जाता है। पाकिस्तान में औरतों की शिक्षा के विषय में कहा जाता है कि अगर वे अधिक पढ़ लेगी तो वे उन्मुक्त हो जाएंगी जिससे सामाजिक दुर्व्यवस्था उत्पन्न होगी।

- नेपाल, श्रीलंका आदि देश में औरतों को कृषि कार्य करने पर बल दिया जाता है।
- आज भी पुरुष प्रधान समाज पुत्र प्राप्ति में प्रसन्नता, समाज में उच्च स्थान तथा पुत्र को भावी जीवन का सहारा माना जाना भी बालिकाओं की शिक्षा में विघ्न उत्पन्न करता है।
- बीच में पढ़ाई छोड़ने का एक मुख्य कारण यह भी है कि लड़कियों का विवाह कम उम्र में होना और साथ ही पारिवारिक जिम्मेदारी की शिक्षा को महत्वपूर्ण मानना। बांग्लादेश में 13-16 वर्ष शादी की उम्र है तथा 25 वर्ष होते-होते सभी का विवाह कर दिया जाता है (इस्लाम नजरूल 1998)। भारत में 18 वर्ष विवाह की अवस्था मानी गई है।
- बीच में पढ़ाई छोड़ने का एक मुख्य कारण परिवार में निरक्षरता होना है। निरक्षर परिवारों में शिक्षा की महत्ता को परिवारजन नहीं समझ पाते।
- नामांकन के पश्चात् विद्यालय न जाने के कुछ अन्य कारण विद्यालय का दूर होना, पारिवारिक कारण, धर्मान्धता और निकट का समाज भी एक मुख्य कारण है जो शिक्षा में बाधक है।

विभिन्न देशों द्वारा बालिकाओं की शिक्षा के लिए किए गए प्रयास

बालिकाओं को समुचित शिक्षा के अवसर प्राप्त हो इसके लिए सभी देशों ने प्रयास किए हैं जो सराहनीय हैं:

1. भारत में सन् 1948-49 विश्वविद्यालय आयोग ने अपनी संस्तुति देते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में पहली बार स्त्री की समानता की बात की और उनकी निरक्षरता उन्मूलन पर बल दिया। भारत में सन् 2000 में सर्व शिक्षा अभियान के तहत शिक्षा को मूल अधिकारों से जोड़ कर सभी की शिक्षा का प्रावधान किया जिसका मुख्य उद्देश्य बालिकाओं को भी शिक्षा प्रदान करना था। यह शिक्षा बालिकाओं को नि:शुल्क प्रदान की जाती है।
2. श्रीलंका ने (CENWOR 1995) में राष्ट्रीय योजना के तहत स्त्री शिक्षा पर बल दिया।
3. सार्क (SAARC) ने (1999-2000) के दशक को लड़कियों का दशक (Girl child Decade) घोषित किया जिसका उद्देश्य बालिकाओं की शिक्षा एवं उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना था।

4. 1980-85 में नेपाल ने भी स्त्री शिक्षा के लिए पहली राष्ट्रीय योजना बनाई।
5. पाकिताान ने 9वीं (1997NIPS) योजना के अन्तर्गत 1998 में सभी की शिक्षा के लिए प्रावधान किया जिसके पीछे स्त्री शिक्षा एक मंतव्य था।
6. बांग्लादेश ने 1990 में सभी के लिए शिक्षा का प्रावधान किया जिससे बालिकाएँ भी शिक्षित हो सकें।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सभी देशों ने ''सभी के लिए शिक्षा'' का प्रावधान कर बालिकाओं की शिक्षा का निरंतर प्रयास कर उन्हें जीवन की मुख्य ध ाारा से जोड़ने का प्रयास किया।

महिला शिक्षा और जीवन प्रत्याशा में संबंध

शिक्षा व्यक्ति की जीवन शैली को प्रभावित करती है। अपने स्वास्थ अपने हित और अपने अहित को शिक्षा के माध्यम से जानकर व्यक्ति अपने जीवन स्तर में भी परिवर्तन करता है। शिक्षा व्यक्ति को उसके अनुसार प्राप्त होने वाली सुविधाओं का ज्ञान कराती है। व्यक्ति अपने अनुसार उन सुविधाओं का चयन करता है, जिसका परिणाम व्यक्ति की आयु तथा स्वास्थ पर दिखाई देता है। नई दवाईयां, नई तकनीकें व्यक्ति को जीवन को जीने के लिए मदद कर रही है शायद यही कारण है कि औरतों की औसत आयु भी बढ़ी है।

साक्षरता और जीवन प्रत्याशा में जब हम संबंध देखते हैं तो यह सुचारू रूप से ज्ञात हो जाता है कि जहां महिलाएं साक्षर हैं वहाँ उन्होंने अपने स्वास्थ के लिए

देश	कुल जीवन प्रत्याशा	महिला जीवन प्रत्याशा
भारत	63.3%	65.16%
श्रीलंका	74%	75.86%
मालदीव	66.6%	65.42%
भूटान	62.9%	54.11%
बांग्लादेश	62.8%	62.02%
नेपाल	61.6%	59.5%
पाकिस्तान	63.0%	64.01%

नोट– जीवन प्रत्याशा से संबंधित सभी आंकड़े-2006 सर्वेक्षण ह्यूमन डेवलपमेंट इन्डेक्स यू. एन.डी.पी. द्वारा

उचित साधनों का उपयोग किया है जिसके कारण वे अधिक उचित प्रकार से जीवन यापन कर रही हैं। शिक्षा प्राप्त कर महिलाओं में स्वावलंबन आया है। उन्होंने अपने जीवन स्तर को ऊँचा किया है। जहाँ शिक्षा कम है वहाँ नवीन साधनों का प्रयोग भी कम है जिससे जीवन प्रत्याशा भी कम ही दिखाई पड़ती है।

महिला सशक्तीकरण

महिला सशक्तीकरण का तात्पर्य है महिलाओं का चहुँमुखी विकास, जिसमें उनके जीवन का प्रत्येक पहलू शामिल हो। समाज से लिंग भेद के आधार पर भेदभाव समाप्त हो तथा सभी को समान जीवन जीने के अवसर प्राप्त हो। यह सशक्तीकरण का प्रक्रिया मात्र बाह्य न होकर आन्तरिक भी है। इसीलिए उसे चेतनता एवं संवेदनशीलता से जोड़कर देखना आवश्यक है। रुढ़िवादिता, धर्मान्धता आदि से हट कर जब महिला को सर्वप्रथम घर में तथा घर से प्रारंभ होकर समाज में उचित स्थान प्राप्त होगा तभी सही मायने में महिला सशक्त होगी। प्रत्येक देश ने इस विषय में गहनता से विचार कर महिलाओं की दशा में सुधार लाने हेतु शिक्षा, स्वास्थ से लेकर उनके रोजगार तक प्रयास करना आरम्भ किया है। इसी प्रयास का एक स्वरूप विभिन्न देशों द्वारा राजनीति में महिलाओं को आगे लाने के लिए संसद में महिलाओं की भागीदारी भी है। जैसे–

देश	–	**सीटों का आरक्षण (%)**
भारत	–	9.3
पाकिस्तान	–	20.6
श्रीलंका	–	4.9
नेपाल	–	6.4
मालदीव	–	4.6
भूटान	–	8.7
बांग्लादेश	–	2.0

नोट– संसद की सीटों का आरक्षण संबंधी सभी आंकड़े-2006 सर्वेक्षण ह्यूमन डेवलपमेंट इन्डेक्स यू.एन.डी.पी. द्वारा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इन देशों ने उस क्षेत्रों में भी महिलाओं को आगे लाने का प्रयास किया है जिन क्षेत्रों में महिला का आना उचित नहीं माना जाता था। एशियाई देशों ने महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था पर तथा उनके विकास के कार्यक्रम को

पूर्ण करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया है। इन सभी प्रयासों को देखते हुए भी इन्हें संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। ये सभी योजनाएं जितनी क्रियाशील क्षेत्र में होनी चाहिए उससे अधिक ये कागजों पर फलीभूत दिखाई देती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण इस रूप में दिखाई पड़ता है कि आज भी महिलाओं को अपने विषय में सोचने का अधिकार नहीं है, उसे अपनी शिक्षा, अपना विवाह यहाँ तक कि वह गर्भ धारण करे या न करे इस विषय में भी निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त नहीं है। ये सभी अधिकार जिसमें महिला अपने हित-अहित सोचकर जब तक स्वयं अपने लिए जागरूक नहीं होती तब तक सही रूप में महिला सशक्तीकरण की बात निरर्थक ही सिद्ध होगी।

इन आंकड़ों का विस्तृत चिन्तन करने से यह भी भली-भांति ज्ञात होता है कि महिलाओं की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी है क्योंकि कोई भी देश विश्व की आधी जनसंख्या को नकार कर आगे बढ़ने का सपना नहीं देख सकता। हर क्षेत्र में महिलाओं का प्रतिनिधित्व प्रत्यक्ष या परोक्षत: दिखाई दे रहा है पर यह भी सत्य है कि अभी इसमें और प्रयास की आवश्यकता है। इसके लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थानों को आगे आने की जरूरत है जिसके माध्यम से हम इनकी शिक्षा, स्वास्थ्य एवं स्वालम्बन के लिए सफल हो सकते हैं।

संदर्भ

बनबीज 1998 बांग्लादेश एजुकेशन स्टेटिस्टिक्स ढाका-मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन

शर्मा उषा 2003) : वूमेन इन साउथ एशिया: इम्प्लॉयमेंट, इम्प्लॉयमेंट एंड ह्यूमन डेवलपमेंट-आथर्स प्रेस (VI)

मुखर्जी एस.एन. : एजुकेशन पॉलिसी आफ इंडिया

द कॉन्स्टीट्यूशन आफ इंडिया (1950)

एजूकेशन फॉर ऑल (ई-9 इक्सपीरियेंसेज) रिपोर्ट आफ द मीटिंग आफ इ-9 कन्ट्रीज

एशियन डेवलपमेंट बैंक 2001, वूमेन इन बांग्लादेश-कन्ट्रीब्रीफिंग पेपर

प्रो. गुप्ता एस.पी.-आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याऐं

खान सलमा (1998) : ए माइक्रो व्यू ऑफ द सिटुवेशन आफ वूमेन इन बांग्लादेश द यूनिव प्रेस लि.

इस्लाम नजरूल (1998) : ऐन इन्क्वायरी इन टू प्राइमरी एजूकेशन इन बांग्लादेश सोशल रिब्यू वाल्यूम (XV) नं.-2

इम्प्लीमेंटेशन ऑफ द बीजिंग प्लेटफार्म फार ऐक्शन-श्रीलंका बीजिंग वर्ल्ड कॉन्फ्रेंस (CENWOR-1995)

द स्टेट ऑफ पॉपुलेशन इन पाकिस्तान-1987 NIPS

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

समेकित शिक्षा के अंतर्गत सामान्य एवं विशेष विद्यालयों में अध्ययनरत् विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन का अध्ययन

आर.एन. केवट*

प्रस्तुत शोध में विकलांग बच्चों की समेकित शिक्षा के अंतर्गत सामान्य एवं विशेष विद्यालयों में अध्ययनरत बालक बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के निष्कर्ष इन विशिष्ट बालकों की प्रतिभा, उपलब्धि एवं समायोजन की दिशा में सहयोगी होंगी।

समस्या का स्पष्टीकरण : विद्यालयों में अध्ययनरत विकलांग विद्यार्थी समस्यात्मक बालक कहे जाते है। शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता के कारण इनके सामाजिक समायोजन एवं शैक्षिक उपलब्धि सामान्य बालकों से भिन्न होती हैं, अतः इनके लिए विशेष देख रेख एवं शिक्षण प्रकिया की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के बालक हीनभावना से ग्रस्त न हो सके इसके लिए शासन की ओर समेकित शिक्षा योजना प्रारंभ की गयी है। इनकी आवश्यकताओं को देखते हुए सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विकलांग बालकों के लिए विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना पर भी जोर दिया गया है। प्रस्तुत शोध में सामान्य एवं विशिष्ट विद्यालयों में अध्ययनरत विकलांग बालकों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन का अध्ययन किया गया है।

---

* सहायक प्राध्यापक, शासकीय शिक्षा महाविद्यालय, जबलपुर, मध्य प्रदेश

शोध समस्या में प्रयुक्त तकनीकी शब्द

अ- समेकित शिक्षा-समेकित शिक्षा से तात्पर्य विकलांग बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ सामान्य विद्यालयों में शिक्षित करना ताकि, वे सामान्य बच्चों की तरह विकसित हो सके अर्थात समेकित शिक्षा सहयोगी शिक्षा है जो विकलांग को सामान्य स्कूल सेटअप के साथ शिक्षा में लोकव्यापीकरण के उद्देश्यों को पूरा करने की दृष्टि से की जा सकती है।

ब- सामान्य विद्यालय-वह स्थान जहां सभी सामान्य बालक शिक्षा ग्रहण करते हैं तथा उनका सर्वांगीण विकास होता है।

इन विषयों में समेकित शिक्षण के अंतर्गत विकलांग बच्चों के अध्ययन की भी सुविधा होती है।

स- विकलांग किसी सामान्य मानव की अपेक्षा एक या एक से अधिक क्रियाओं को न कर पाने की क्षमता निर्योग्यता की कमी या रूकावट को विकलांगता कहते हैं।

ड- शैक्षणिक उपलब्धियों- से तात्पर्य व्यवहार में आये उन परिवर्तनों से है, जो शिक्षण के दौरान या सानिध्य में रहने के कारण सामान्यत: छात्रों से अपेक्षित हैं। अर्थात शैक्षिक उपलब्धि किसी विशेष विषय अथवा पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समझ और कुशलताओं का मापन के परिणाम को कहते हैं।

इ- सामाजिक समायोजन- सामाजिक समायोजन का अर्थ विद्यार्थियों के विद्यालय एवं समाज की सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल करने की क्षमता से है।

पूर्व में किए गए शोध कार्य

1. ''जबलपुर नगर के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विकलांग छात्र-छात्राओं की शैक्षणिक समस्याओं का अध्ययन
   शर्मा नरोत्तम दस 1980 एम.एड. जबलपुर विश्वविद्यालय
2. शरीरिक विकलांगों की मनोवैज्ञानिक विशेषताएं
   चौधरी 1966 एम.ए. मनोविज्ञान, जबलपुर विश्वविद्यालय
3. मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से नेत्रहीनों का अध्ययन एवं उनके प्रति समाज के दृष्टिकोण का अध्ययन
   सबलोक 1976 एम.ए. मनोविज्ञान जबलपुर विश्वविद्यालय

शोध अध्ययन के उद्देश्य

1. विकलांग के विशिष्ट विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा उनके सामाजिक समायोजन का अध्ययन करना।
2. सामान्य विद्यालयों में अध्ययनरत विकलांग बालकों की शैक्षिक उपलब्धि एवं उनकी सामाजिक परिस्थिति की स्थिति का अध्ययन करना।
3. चयनित विद्यालयों के विकलांग बालकों से मिलकर महत्वपूर्ण तथ्यों को प्राप्त कर उनका सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा शोध निष्कर्ष प्राप्त करना।

शोध परिकल्पनाएं

1. विशेष विद्यालय में विकलांग तथा सामान्य विद्यालयों के विकलांग विद्याथियों की शक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नही रहता है।
2. विशेष विद्यालय के विकलांग तथा सामान्यविद्यालयों के विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन में कोई सार्थक अंतर नही होता है।

शोध उपकरण : इस अध्ययन में विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन के लिए बाल समायोजन मापनी श्रीमति रागिनी दुबे द्वारा निर्मित उपकरण का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार शिक्षक निर्मित सामान्य प्रश्नावली के द्वारा उनकी शैक्षिक उपलब्धियां ज्ञात की गई हैं।

न्यायदर्श : इस अध्ययन में न्यायदर्श का चयन इस प्रकार किया गया–

1. विशेष विद्यालय 10 – 40 छात्र 40 छात्राएं
2. समेकित विद्यालय 20 – 40 छात्र 40 छात्राएं

सीमांकन

- इस अध्ययन में जबलपुर एंव सिवनी जिले के विद्यालयों से बालक बालिकाओं का चयन किया गया।
- चयनित बालिका एवं बालकों में अस्थि विकलांग विद्यार्थियों को शामिल किया गया है।

शोध प्रक्रिया : इस शोधकार्य के सर्वेक्षण विधि का प्रयोग कर महत्वपूर्ण तथ्यों का संकलन कर सांख्यकीय विश्लेषण से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किए गए हैं।

तथ्यों का विश्लेषण एवं निष्कर्ष

तालिका -1

परिकल्पना-1 विशेष विद्यालय में विकलांग तथा सामान्य विद्यालयों के विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अंतर नहीं रहता है।

अ-अस्थि विकलांग का शैक्षिक उपलब्धि के मध्य क्रांतिक अनुपात

विद्यालय (लिंग)	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अंतर की मानक त्रुटि	क्रांतिक अनुपात
सामान्य विद्यालय (बालक, बालिका)	68	61.98	5.62	0.99	0.10
विशेष विद्यालय (बालक, बालिका)	70	61.88	6.08		

स्वतंत्रता की कोटि -.02
.01 सार्थकता स्तर पर मान - 2.62
.05 सार्थकता स्तर पर मान -1.98

व्याख्या-तालिका -1 से स्पष्ट है कि विशेष विद्यालय में अध्ययनरत अस्थि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान 61.88 एवं सामान्य विद्यालयों में अध्ययनरत अस्थि विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मध्यमान 61.98 है जो तकरीबन समान है। उनमें अंतर की सांख्यकीय दृष्टिकोण से विवेचना करने हेतु क्रांतिक अनुपात की गणना की गई है। क्रांतिक अनुपात 0.10 प्राप्त हुआ जो कि 0.05 सार्थकता स्तर के न्यूनतम निर्धारित मूल्य 1.98 से कम है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि सामान्य एवं विशिष्ट विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्राप्त परिणाम की अंतर मानक त्रुटि का मान 1.96 से कम है जो परिणामों की विश्वसनीयता की पुष्टि करते हैं।

तालिका-2

ब-अस्थि विकलांग विद्यार्थियों (बालक-बालिका) के सामाजिक समायोजन के मध्य क्रांतिक अनुपात

विद्यालय (लिंग)	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	अंतर की मानक त्रुटि	क्रांतिक अनुपात
सामान्य विद्यालय (बालक, बालिका)	5.8	0.97		0.8	
विशेष विद्यालय (बालक, बालिका)	70	36.97		5.7	

स्वतंत्रता की कोटि - .02

.01 सार्थकता स्तर पर मान - 2.62

.05 सार्थकता स्तर पर मान -1.98

व्याख्या-तालिका-2 से स्पष्ट है कि विशिष्ट विद्यालय में अध्ययनरत् अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन का मध्यमान 36.97 एवं सामान्य विद्यालय में अध्ययनरत अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन का मध्यमान 36.89 है इनका क्रांतिक अनुपात 0.08 प्राप्त हुआ है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर के मूल्य 1.98 से कम है। इससे यह प्रतीत होता है कि सामान्य विद्यालय में अध्ययनरत् अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन तथा विशिष्ट विद्यालय में अध्ययनरत् अस्थि विकलांग विद्यार्थियों के सामाजिक समायोजन में सार्थक अंतर नहीं है।

प्राप्ति परिणामों के अंतर की मानक त्रुटि का मान न्यूनतम मान 1.96 से कम है अत: परिणामों की विश्वसनीयता की पुष्टि होती है।

उपरोक्त अध्ययन से यह तथ्य प्राप्त होता है, कि समेकित शिक्षा के अंतर्गत अध्ययनरत् सामान्य विद्यालय एवं विशिष्ट विद्यालयों में अध्ययनरत् विकलांग विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं सामाजिक समायोजन में अंतर नहीं पाया गया है, अत: अभिभावकों एवं शिक्षकों को चाहिए कि इस विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों पर विशेष ध्यान देकर उनके विकास में समुचित अवसर देना चाहिए।

संदर्भ

दास बी.एन., विशिष्ट बालकों के लिए शिक्षा- अजंता प्रकाशन दिल्ली,

डा. महेश भार्गव, विशिष्ट बालक- भार्गव बुक हाऊस, आगरा,

जायसवाल सीताराम, व्यक्तिगत मनोविज्ञान- विनोद पुस्तक मंदिर आगरा,

कौशिक ब्रा.ना., विकलांग शिक्षा सिंधु- राज. हिंदी ग्रंथ अकादमी,

शर्मा आर.ए., शिक्षा अनुसंधान- आर लाल बुक डिपो, मेरठ

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद म.प्र. भोपाल- विकलांग बच्चों के लिए समेकित शिक्षा योजना,

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

शोध टिप्पणी/संवाद

बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य संबंध का अध्ययन

प्रवीन देवगन*

सारांश

धर्म भारतीय मूल का परम् मूल्यवान शब्द है। मानवतावादी सद्भावना और सत्यवृत्तियों की स्थापना धर्म का मुख्य लक्ष्य है। अन्तःकरण की शुद्धता और आदर्शवादिता की भूमि पर एकता के भाव की अनुभूति कराना ही धर्म की मूल्यपरक परिभाषा है। धार्मिक शिक्षा धर्म से प्रेरित होती है। इसके द्वारा बालिकाओं के संवेगों, अभिव्यक्तियों और भावनाओं का शोधन होता है। सम्पूर्ण जगत में नैतिकता और मानवता को शिक्षा के सर्वश्रेष्ठ उद्देश्यों के रूप में स्वीकार किया गया है। उस शिक्षा का कोई मूल्य नही है जो नैतिकता को दृढ़ न करे। प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न धर्मों से संबंधित बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता का अध्ययन, तथा विभिन्न धार्मिक समूह की बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना था। शोध में आगरा की विभिन्न धर्मों की अनुयायी हाईस्कूल की 100 बालिकाओं को अध्ययन में शामिल किया गया। बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य संबंध को ज्ञात करने के लिए रिलिजियोसिटी एवं मोरल वैल्यू स्केल का प्रयोग किया गया। शोध के परिणामों में पाया कि मूल्यतः विभिन्न धर्मों की अनुयायी बालिकाओं में धार्मिक प्रवृत्ति की भावना लगभग समान है तथा अधिकतर बालिकाएं नैतिकता को मानने वाली होती हैं।

*रीडर, शिक्षा संकाय, दयालबाग शिक्षण संस्थान, आगरा

धार्मिकता एवं नैतिकता के मध्य सहसंबंध सभी धर्मों में अलग-अलग स्तर का पाया गया।

प्रस्तावना

आधुनिक युग में धर्म शब्द अत्यंत विवाद का विषय बना हुआ है। धर्म, नैतिकता एवं शिक्षा के बीच गहरा संबंध है। प्राचीन एवं मध्यकाल में यह संबंध अत्यंत गहरा था। संसार के सभी देशों में शिक्षा, धार्मिक पुरुषों, पादरियों, मौलवियों, ऋषियों तथा मुनियों द्वारा दी जाती थी और धार्मिक स्थान ही शिक्षा संस्था के रूप में कार्य करते थे। धर्म और नैतिकता को एक-दूसरे से पृथक करना असंभव है। धर्म का सार नैतिकता है और नैतिकता का आधार धर्म है। नैतिक मूल्यों का विकास धार्मिक विश्वासों से होता है। व्यक्ति की नैतिक प्रगति, उसके धार्मिक दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। अच्छे चरित्र के विकास में धर्म उसकी सहायता करता है। वर्तमान समय में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की समस्या अत्यधिक जटिल बनी हुई है। वैदिक एवं बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा का सर्वोच्च स्थान था। मुस्लिम शिक्षा भी धार्मिक आदर्शों से अलग नहीं थी। सिक्ख धर्म शिष्यों का धर्म कहा जाता है। इसका अभ्युदय मध्ययुग में हुआ। उसका प्रवर्तन महान संत श्री गुरूनानकदेव ने किया।

ईसाई धर्म का विकास यहूदी धर्म से हुआ। मिशन स्कूल भी ईसाई धर्म के आदर्शों के अनुसार धार्मिक शिक्षा प्रदान करते थे। अंग्रेजों ने धर्मनिरपेक्ष नीति का पालन किया। शिक्षण संस्थाओं में किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती थी।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समिति (1959-49) ने अपना यह मत व्यक्त किया कि वर्तमान भारतीय समाज के अधिकतर दोषों का मूल कारण है यहां के निवासियों के जीवन पर धर्म का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। समिति का कहना है कि भारत में धार्मिक बंधन, जो पहले भारतीय जीवन को एकता के सूत्र में बांधे रहते थे, ढीले पड़ते जा रहे हैं और जो नये-नये विचार हमारे समक्ष आ रहे हैं, जिन्हें हम बाह्य दृष्टि से ग्रहण तो कर रहे हैं, परन्तु आन्तरिक रूप से उसका अर्थ समझने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं। हमारे विद्यार्थी अपने जीवन के आरंभ के वर्षों से ही आध्यात्मिक तथा नैतिक गुणों का आदर करना सीखें, यदि ऐसा नहीं होगा तो हमारा राष्ट्र एक प्राणहीन राष्ट्र हो जाएगा।

भारतीय शिक्षा आयोग ने सिफारिश की कि बच्चों को अपने-अपने धर्मों की शिक्षा दी जानी चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (1944-46) ने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा

के महत्व को स्वीकार किया। राजा मानिकम एम. (1966) के अनुसार धार्मिक अभिवृत्ति, विद्यार्थी और पेशेवर लोग दोनों समूहों में परिवर्तन के साथ सहसंबंध रखती हैं। ज्योति तिवारी (1998) द्वारा किये गए अध्ययन के अनुसार संयुक्त परिवार की बालिकाएं एकाकी परिवार की अपेक्षा अधिक धार्मिक पाई गई । बी.के. टण्डन (1967) ने भी बताया कि निम्न आर्थिक समूह की बालिकाएं अधिक धार्मिक प्रवृत्ति की होती हैं। आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य बालिकाओं का केवल शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यात्मक विकास ही नहीं बल्कि उनके नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का विकास करना भी है। शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा एक सशक्त माध्यम बन सके।

कोठारी आयोग (1964-66) ने भी इस विचार का समर्थन किया कि सामाजिक नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने के लिए सचेत तथा संगठित प्रयास किये जाने चाहिए। इन मूल्यों को विद्यालय के कार्यक्रम का अंग बनाया जाये और उनकी शिक्षा के लिए प्रति-सप्ताह समय तालिका में कुछ घंटे निर्धारित किये जाएं। विद्यालय स्तर पर संसार के महान धर्मों की चयन की हुई कहानियों द्वारा धर्म के आधारभूत मूल्यों की शिक्षा दी जाए क्योंकि वर्तमान पाठ्यक्रम का दोष गंभीर दोष है।

शिक्षा का नैतिक मूल्यों के अनुसार नवीनीकरण करने के लिए सक्रिय साधन अपनाना अत्यन्त आवश्यक है जिसके लिए प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा को धर्म पर आधारित किया जाना चाहिए जिससे उच्च कोटि की सभ्यता तथा छात्र-छात्राओं में अच्छे गुण एवं आदतों का निर्माण हो सके और धार्मिक शिक्षा के माध्यम से वे परिवार, समुदाय, समाज, राष्ट्र के निर्माण में अपना योगदान दे सकें।

कोठारी आयोग की सिफारिशों के परिणाम स्वरूप विद्यालयों में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा को विद्यालयी पाठ्यक्रम में महत्व दिया जाने लगा। यद्यपि उक्त शिक्षा सभी विद्यालयों में किसी न किसी रूप में दी जाती है तथापि क्या इसका प्रभाव विद्यार्थियों की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता में भिन्नता रखते हैं? उक्त प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत समस्या के शोध विषय के रूप में चयन किया गया।

अध्ययन के उद्देश्य

1. विभिन्न धर्मों से संबंधित बालिकाओं की धार्मिक प्रवत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

2. धार्मिक स्तर के परिप्रेक्ष्य में बालिकाओं की नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. विभिन्न धार्मिक समूह की बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य सहसंबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पना

1. विभिन्न धर्मों की बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति में सार्थक अंतर नही होता है।
2. विभिन्न धर्मों से संबंधित बालिकाओं के नैतिक स्तर में सार्थक अंतर नही होता है।
3. बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य सार्थक संबंध नहीं होता है।

अध्ययन के चर

स्वतंत्र चर - धार्मिक प्रवृत्ति

आश्रित चर - नैतिकता

अध्ययन का सीमांकन

1. प्रस्तुत शोध आगरा शहर के हाईस्कूल की बालिकाओं तक सीमित रखा गया।
2. धार्मिक प्रवृति के अध्ययन हेतु हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख एवं ईसाई धर्म की अनुयायी बालिकाओं को अध्ययन में सम्मिलित किया गया।

अध्ययन प्रक्रिया

1. **अनुसंधान विधि**-शोध अध्ययन के लिए वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि प्रयुक्त की गई।
2. **न्यादर्श चयन**- प्रस्तुत शोध में प्रतिदर्श चयन सोद्देश्य पूर्ण आकस्मिक विधि के द्वारा चयनित 5 विद्यालयों से किया गया। न्यायदर्श में विभिन्न समुदायों की हाईस्कूल की 100 छात्राओं का चयन किया गया जिसमें विभिन्न धार्मिक समुदायों यथा हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, प्रत्येक से 25-25 छात्राओं को न्यादर्श के रूप में चयन किया गया।

उपकरणों का चयन-बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य संबंध को ज्ञात करने के लिए निम्न उपकरणों का चयन किया गया-

1. **एल.आई.भूषण द्वारा निर्मित ''रिलिजियोसिटी स्केल''**का प्रयोग किया गया। इसमें कुल 36 प्रश्न हैं। समस्त प्रश्नों के 5 विकल्प दिये गये हैं। इसके अंतर्गत 25 प्रश्न धनात्मक तथा 11 प्रश्न ऋणात्मक हैं।
2. **अल्पना सेन गुप्ता द्वारा निर्मित ''मोरल वैल्यू स्केल''** का प्रयोग किया गया। इसमें कुल 36 प्रश्न हैं। प्रत्येक प्रश्न के लिए दो विकल्प हाँ/नहीं, दिये गये हैं।

सांख्यिकीय प्रविधियाँ-शोध प्रदत्तों का कुशलता पूर्वक विश्लेषण करने हेतु सांख्यिकीय प्रविधियों के अंतर्गत मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, टी-मान तथा पियर्सन सहसंबंध गुणांक की गणना की गयी।

उपलब्धियाँ एवं विवेचना

तालिका-1

विभिन्न धर्मानुसार बालिकाओं की धार्मिकता के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन एवं टी-मान

वर्ग	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	टी-मान	सार्थकता स्तर
हिन्दू	25	145.7	12.4	0.5022	0.05 स्तर पर
मुस्लिम	25	147.3	10.00		असार्थक
हिन्दू	25	145.7	12.4	0.7558	0.05 स्तर पर
सिक्ख	25	142.9	13.76		असार्थक
हिन्दू	25	145.7	12.4	1.3082	0.05 स्तर पर
ईसाई	25	140.9	13.52		असार्थक
मुस्लिम	25	147.3	10.00	1.2933	0.05 स्तर पर
सिक्ख	25	142.9	13.76		असार्थक
मुस्लिम	25	147.3	10.00	1.9029	0.05 स्तर पर
ईसाई	25	140.9	13.52		असार्थक
सिक्ख	25	142.9	13.76	0.1343	0.05 स्तर पर
ईसाई	25	140.9	13.52		असार्थक

उद्देश्य-1: विभिन्न धर्मों से संबंधित बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका-1 से विदित होता है कि धार्मिक प्रवृत्ति अन्य वर्गों की तुलना में मुस्लिम वर्ग की बालिकाओं में सबसे अधिक पाई गई जिनका मध्यमान (147.3) है। हिन्दू वर्ग की बालिकाएँ द्वितीय स्थान पर पाई गईं (मध्यमान 145.7) जबकि ईसाई समुदाय की बालिकाओं में धार्मिक प्रवृत्ति सबसे कम (मध्यमान 140.9) देखी गयी परन्तु विचलनशीलता सबसे कम मुस्लिम समुदाय में तथा सबसे अधिक सिक्ख एवं हिन्दू समुदायों की बालिकाओं में पाई गई। टी-मान से स्पष्ट है कि विभिन्न समुदाय, धार्मिकता की दृष्टि से समान है, क्योंकि सभी समुदायों के अनुपात मान 0.05 स्तर पर असार्थक पाये गये। इससे प्रतीत होता है कि अधिकांश बालिकाएं धार्मिक प्रवृत्ति की हैं। विभिन्न समुदायों में धार्मिकता संबंधी मध्यमानों में जो अन्तर परिलक्षित हो रहा है वह पारिवारिक पृष्ठभूमि अथवा संयोगवश ही कहा जा सकता है।

तालिका-2

बालिकाओं के धार्मिक स्तर के परिप्रेक्ष्य में नैतिकता के सांख्यकीय आँकड़े

वर्ग	संख्या	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	टी-मान	सार्थकता स्तर
हिन्दू	25	30.06	1.65	0	0.05 स्तर पर
मुस्लिम	25	30.06	2.08		असार्थक
हिन्दू	25	30.06	1.65	2.9664	0.05 स्तर पर
सिक्ख	25	28.54	1.96		असार्थक
हिन्दू	25	30.06	1.65	0.6115	0.05 स्तर पर
ईसाई	25	29.66	2.82		असार्थक
मुस्लिम	25	30.06	2.08	2.6596	0.05 स्तर पर
सिक्ख	25	28.54	1.96		असार्थक
मुस्लिम	25	30.06	2.08	2.5707	0.05 स्तर पर
ईसाई	25	29.66	2.82		असार्थक
सिक्ख	25	28.54	1.96	1.6307	0.05 स्तर पर
ईसाई	25	29.66	2.82		असार्थक

उद्देश्य-2: बालिकाओं के धार्मिक स्तर के परिपेक्ष्य में नैतिकता का तुलनात्मक अध्ययन

तालिका-2 से स्पष्ट है कि हिंदू एवं मुस्लिम समुदाय की बालिकाओं का मध्यमान सबसे अधिक (30.06) है जबकि सिक्ख समुदाय की बालिकाओं की नैतिकता का मध्यमान तुलनात्मक दृष्टि से सबसे कम (28.54) है, तथा ईसाई समुदाय का मध्यमान (29.66) औसत स्तर का है, ईसाई बालिकाओं की प्रामाणिक विचलन 2.82 एवं मुस्लिम बालिकाओं का 2.08 देखा गया जबकि हिन्दू एवं सिक्ख में विचलन (1.65 तथा 1.96) कम पाया गया। हिंदू-सिक्ख एवं मुस्लिम-सिक्ख दोनों समुदायों की बालिकाओं के टी-मान (2.9664, 2.6596) के आधार पर अनुपात मान, 0.01 स्तर पर सार्थक पाये गये अर्थात् उनमें सार्थक अंतर पाया गया जबकि इसके विपरीत हिंदू-मुस्लिम, हिंदू-ईसाई, मुस्लिम-ईसाई, सिक्ख-ईसाई के अनुपात मान, 0.05 स्तर पर असार्थक पाये गये अर्थात् चारों समुदायों के मध्य सार्थक अंतर प्राप्त नहीं हुआ। सांख्यकीय आंकड़ों से प्रतीत होता है कि समाज में बालिकाओं को नैतिक मूल्य मानने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप नैतिकता की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है।

तालिका-3

विभिन्न धार्मिक समूह की बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य सहसंबंध

समूह	धार्मिकता एवं नैतिकता के मध्य सहसंबंध	सहसंबंध गुणांक	सार्थकता स्तर
हिन्दू	–0.0034	ऋणात्मक नगण्य	0.05 स्तर पर असाथकता
मुस्लिम	–0.0889	ऋणात्मक नगण्य	0.05 स्तर पर असाथकता
सिक्ख	–0.0327	ऋणात्मक नगण्य	0.05 स्तर पर असाथकता
ईसाई	–0.0002	ऋणात्मक नगण्य	0.05 स्तर पर असाथकता

उद्देश्य-3: विभिन्न धार्मिक समूह की बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति एवं नैतिकता के मध्य सहसंबंध का अध्ययन

तालिका-3 सारणी से यह ज्ञात होता है कि किसी भी धर्म की बालिकाओं की धार्मिक प्रवृत्ति का नैतिकता के मध्य आपस में नगण्य ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया तथा

0.5 के स्तर पर प्राप्त मान .388 के मान से अत्यधिक कम है जो यह सिद्ध करता है कि धार्मिकता का नैतिकता पर प्रभाव नगण्य है। धार्मिकता एवं नैतिकता के मध्य जो सहसंबंध पाया गया वह सभी धर्मों में अलग-अलग था। यह अंतर परिवार का आकार, घर का वातावरण, संयुक्त परिवार प्रणाली जाति प्रथा, आर्थिक स्थिति, मित्र समूह, मीडिया आदि के कारण हो सकता है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज में विभिन्न धर्मों से संबंधित बालिकाओं में धार्मिक प्रवृत्ति की भावना लगभग समान है। इससे स्पष्ट होता है कि सामान्यत: बालिकाएं धार्मिक प्रवृत्ति की होती हैं क्योंकि चारों ही समुदायों में अधिकतर बालिकाएं धार्मिक प्रवृत्ति की पाई गयीं। बालिकाएं, बालकों की अपेक्षा संस्कारों एवं परम्पराओं को अधिक मानती हैं। इनकी प्रवत्ति भययुक्त होती है जिसके कारण प्रत्येक कार्य को करने से पूर्व ईश्वर का नाम लेती हैं। राजा मानिकम एम. (1966) ने भी अपने अध्ययन में यही पाया कि बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में धार्मिक प्रवृत्ति अधिक होती है। तथा पूजा-पाठ वाले स्थानों पर अधिक जाती हैं। मुस्लिम बालिकाएं अधिक धार्मिक प्रवृत्ति की होने का प्रमुख कारण है कि बालिकाओं को बचपन से ही धर्म के पति प्रोत्साहित किया जाता है। मुस्लिम बालिकाएं धर्म के प्रति दृढ़ होती हैं। अपने धर्म से संबंधित पूजा पाठ नियम से करती हैं। शोध अध्ययन के परिणामों से ज्ञात होता है कि अधिकतर बालिकाएं नैतिकता को मानने वाली होती हैं। बालिकाओं की नैतिकता आवृत्ति वितरण में ऋणात्मक विषमता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बालिकाओं में नैतिकता भी अधिक होती है क्योंकि सामाज में बालिकाओं को नैतिक मूल्य मानने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जिससे इनमें नैतिकता की प्रवृत्ति अधिक विकसित हो जाती है। कपूर एम. (1986) ने भी स्पष्ट किया है कि नैतिकता, आज्ञा पालन, राष्ट्रीयता, व्यवहार-वृति प्रजातंत्र के मूल्य प्राथमिक सामाजीकरण के महत्व को नष्ट नहीं करते बल्कि बालकों के जीवन में, घर परिवार में और विद्यालय में यह महत्वपूर्ण होते हैं। नैतिकता की दृष्टि से हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख इन तीनों समुदाय की बालिकाओं में आपस में अंतर होता है। प्रत्येक समुदाय के अपने नैतिक नियम होते हैं जिनका पालन करने पर बल दिया जाता है।

निष्कर्षत: यह देखा गया कि धार्मिकता एवं नैतिकता के मध्य सहसंबंध सभी धर्मों में अलग-अलग स्तर का है तथा नैतिकता एवं धार्मिकता का आपस में ऋणात्मक सहसंबंध बालिकाओं के घरों का वातावरण जाति प्रथा आर्थिक स्थिति आदि सभी पर

निर्भर करता है। भूषण और सिन्हा (1971) ने भी अपने अध्ययन के निष्कर्ष में यह बताया कि व्यक्तिगत कारक, आयु, शिक्षा, लिंग आदि धर्म पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

शोध परिणामों की उपयोगिता

यद्यपि न्यादर्श का आकार छोटा था जिसके आधार पर प्राप्त परिणामों को लेकर सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता परंतु फिर भी परिणामों से जो संकेत प्राप्त हुए हैं उस आधार पर इस अध्ययन की उपयोगिता अनेक क्षेत्रों में स्पष्ट होती है।

1. **अभिभावकों के लिए उपयोगिता**-अध्ययन के परिणामों के आधार पर अभिभावकों को सुझाव दिया जा सकता है कि बालिकाओं की धार्मिकता एवं धार्मिक परिवेश प्रदान करें। जहां तक संभव हो बालिकाओं को धार्मिक एवं नैतिक बनने के लिए बाध्य न करके उन्हें प्रेरित किया जाए। इस प्रकार उनमें धार्मिक एवं नैतिक गुणों का उच्चतम् विकास किया जा सकता है।
2. **विद्यालय एवं शिक्षकों के लिए**-शिक्षा प्रदान करने का मुख्य कार्य शिक्षित समाज का है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध परिणाम शिक्षकों के लिए दोहरा महत्व रखते हैं, कयोंकि विद्यालय में शिक्षक ही बालकों के अंशकालिक अभिभावक होते हैं। सभी समुदायों की बालिकाओं को धार्मिक एवं नैतिक बनाने के लिए पाठ्यक्रम में धार्मिकता एवं नैतिकता से संबंधित विषयों को सम्मलित किया जाना चाहिए, जो सभी धर्मों की बालिकाओं के लिए अनिवार्य हों, जैसे कि प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम के अंतर्गत स्कूल सभा, समूहगान, शिक्षण के पाठ्यक्रम में धार्मिक नेताओं की कहानियों को स्थान देना चाहिए तथा धर्म एवं नैतिकता से संबंधित श्रव्य एवं दृश्य साधनों का प्रयोग करना चाहिए तथा प्रातः कालीन सभा में सभी धार्मिक ग्रन्थों का पाठ हो तथा विविध धर्मों की शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा के लिए प्रति सप्ताह एक कलाश होना चाहिए। विश्वविद्यालय स्तर पर भी विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन तथा समाज सेवा का कलांश होना चाहिए क्योंकि मनुष्य का चरित्र ही उसके जीवन में उत्थान और पतन, सफलता और असफलता का सूचक है। अतः यदि हम बालक को सफल व्यक्ति, उत्तम नागरिक और समाज का उपयोगी सदस्य बनाना चाहते हैं, उसके अंदर प्रेम, त्याग, सहनशीलता, आत्मविश्वास एवं उत्साह, अनुशासन, मानसिक शांति एवं संतोष उत्पन्न करना चाहते हैं तो उसके चरित्र का निर्माण किया जाना परम आवश्यक है। बालकों में आत्मविश्वास एवं उत्साह, नैतिक मूल्यों के कारण उत्पन्न होता है। यह

तभी संभव है जब उसके लिए धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये जिससे वे अपने जीवन के आरंभ के वर्षों से ही आध्यात्मिक तथा नैतिक गुणों का आदर करना सीखें। सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देने के लिए सचेत तथा संगठित प्रयास किये जाने चाहिए। इन मूल्यों को विद्यालय के कार्यक्रम का अंग बनाया जाये।

संदर्भ

ब्रोअया, एम.एफ. (1959) *सम शोशल एण्ड रिलिजियस लाइक एण्ड डिसलाइक ऑफ स्कूल गोइंग स्टूडेन्ट्स इन आगरा युनिवर्सिटी* आगरा, एम.बी.बुच ''ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', पृष्ठ संख्या 132

गुप्ता, रामबाबू (1900) *भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामाजिक समस्याएं,* आर्य बुक डिपो, पृष्ठ संख्या 494–500

गुप्ता, रन्जना (1989) *ए स्टडी वैल्यू एण्ड जजमैंट ऑफ एडोलेसेन्ट ऑफ टू रिप्रेजेन्टेटिव सेन्टर ऑफ वेस्टर्न एण्ड ईस्टर्न यू.पी.,* पी.एच.डी. एजूकेशन आगरा यूनिवर्सिटी, आगरा।

कुमार, सुबोध एण्ड सिंह आर.पी. (2001) *''रिलीजियस एटीट्यूडस् ऑफ द यूजर्स एण्ड नॉन यूजर्स ऑफ भांग इन द प्रिव्यू ऑफ सोशियो इकानोमिक स्टेटस'',* प्राची जनरल ऑफ साइको कल्चर डाइमेन्शन, वोल्यूम –17,नं. 2

शर्मा, समिधा (1975) *ए स्टडीज द रिलेशनशिप बिटविन द एडजस्टमेंट एण्ड रिलीजियोसिटी, डिजरटेशन आगरा यूनिवर्सिटी,* आगरा।

तिवारी, ज्योति (1998) *रिलीजियोसिटी एज कोरिलेट ऑफ ईगो आईडेन्टिटी ऑफ एडोलेसेन्टस् फ्रॉम ज्वाइंट एण्ड न्यूक्लियर इण्डियन,* जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजूकेशन, वोल्यूम– 29,नं. 1, पृष्ठ संख्या 43–48

जैन, उदय (1991) *द सब्जेक्टिव कान्स्ट्रक्शन ऑफ मोरेलटी: द इंडियन इक्सपीरियंस, इंडियन जर्नल्स सोशल वर्क,* वोल्यूम 45–55, पृष्ठ संख्या 179–194

वालिया, जे.एस. (1900) *आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं,* पाल पब्लिशर्स, जालन्धर, पृष्ठ संख्या 446–463

रावत, हरिकृष्ण (1998) *समाज शास्त्र विश्वकोश,* रावत पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 289–290

अग्रवाल, जे.सी. (1900) *भारतीय शिक्षा पद्धति स्वरूप एवं समस्याएं,* आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 217–228

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

चिंतक और चिंतन

लोकनायक जयप्रकाश नारायण की दृष्टि में ग्रामीण शिक्षा

पंकज कुमार दुबे*

सारांश

ग्रामीण शिक्षा ग्राम विकास का आधार है, और बिना ग्रामीण विकास के इस देश का वास्तविक विकास नही हो सकता। आज आवश्यकता है ग्रामीण शिक्षा में एक क्रांति की जो गांवों की तस्वीर बदल दे, गांव वासियों को गांव में ही रह कर विकास करने का समान अवसर प्रदान करे, उन्हें आत्म निर्भर बना दे, उन्हें वह आत्मसम्मान, वह स्वाभिमान मिले जिसके वे अधिकारी हैं, वह कह सकें कि इस देश की प्रगति में उनका भी महत्वपूर्ण योगदान हैं। गांववसी किसी पूंजीपति की दया पर नही रहें बल्कि समाजवादी व्यवस्था के महत्वपूर्ण अंग बन सकें। ऐसी ही क्रांतिकारी विचारधारा थी लोकनायक जयप्रकाश नारायण की जिन्होंने स्वतंत्रता के उपरांत ग्राम विकास से संबंधित महत्वपूर्ण कार्य किया एवं ग्रामीण शिक्षा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस लेख में लोकनायक जय प्रकाश नारायण की ग्रामीण शिक्षा से संबंधित उनके विचारों को उल्लेखित किया गया है।

विविधताओं से भरा हुआ, जहां विभिन्न संस्कृतियां फल फूल रही हैं, जहां आज भी दुनिया की सबसे पुरातन संस्कृति जीवित है, ऐसा है हमारा भारत वर्ष। भारतीय दर्शन मूलत: आदर्शवादी रहा है परंतु इसके साथ ही यह देश विज्ञान एवं तकनीकी के विकास में भी अग्रणी रहा है। परंतु यहां जो विभिन्न सुविधाएं हैं, जो विकास है उसका ज्यादातर लाभ एक विशेष पर रहने वाले लोगों को ही मिल पाता है यानि शहर के लोगों को

*प्रवक्ता-एम.एड., सीतापुर शिक्ष संस्थान, सीतापुर (उ.प्र.)

जैसे शहर बड़ा होता जाता है सुविधाएं बढ़ जाती हैं और जैसे ही गांव की तरफ हम देखते हैं तो वहां कोई भी सुविधा दृष्टिगोचर नहीं होती। यदि दिखता है तो सिर्फ एक भुलावा। जिसके कारण आज लोग गांवों को छोड़ शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं। रोजगार गारंटी योजना के तहत उन्हें मिलती है चन्द दिनों की मजदूरी, ये भी एक भुलावा है। यह किसी भी तरह किसी व्यक्ति को एक सम्मानजनक, आर्थिक स्तर तक पहुंचाने में असमर्थ है। रही शिक्षा की बात तो उसकी भी गुणवत्ता किस प्रकार की है यह किसी से छुपी नही है। गावं की प्राथकि पाठशालाओं में सिर्फ साक्षरता के लक्ष्य को पूरा किया जा रहा है। गुणात्मक शिक्षा पर ध्यान नही है। क्या इन प्राथमिक पाठशालाओं से पढ़कर छात्र उच्च स्तर तक पहुंच पायेगा, कभी नही। यहां साक्षर मजदूर बनाने की तैयारी चल रही है। सिर्फ एक जिले में एक नवोदय विद्यालय खोल देने से गांवों के सभी लोगों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नही मिल जाती। इस देश की ज्यादातर आबादी गांवों में रहती है। परंतु वही इस देश में दोयम दर्जे का जीवन जी रही है। न ही उसके लिए गांव में ही गुणवत्तापूर्ण शिक्षा है और न ही रोजगार। उसे शिक्षा ग्रहण करने हेतु शहर की तरफ जाना पड़ता है, तो शिक्षा ग्रहण करने के बाद शहरों में नौकरियों के लिए भटकता रहता है। इन सारी समस्याओं की जड़ है इस देश के विकास का प्रारूप जो पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित हो गया है। वैसे कागजों में, भारतीय संविधान में समाजवादी व्यवस्था को अपनाने पर बल दिया गया है। पंरतु व्यवहार में वह दूर-दूर तक नजर नही आता जिसके कारण बेरोजगारी है और यदि रोजगार है भी तो फिर शोषण है।

इन परिस्थितियों में आज आवश्यकता है एक नई राह ढूढ़ने की जहां कोई भुलावा न हो, शोषण न हो, बल्कि इन समस्याओं का वास्तविक समाधान हो।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत कुछ लोगों ने ग्रामीण विकास हेतु कई महत्वपूर्ण कार्य किये जिनमें से एक थे लोकनायक जयप्रकाश नारायण। इन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को एक सम्मानजनक जीवन स्तर तक लाने का सपना देखा और पूरा करने हेतु सब कुछ त्याग कर अपना पूरा जीवन इस कार्य में समर्पित कर दिया। इन्होंने 1954 में राजनीति त्याग कर आम लोगों के बीच रह कर जमीनी स्तर पर कार्य करना शुरू किया एवं ग्रामीण विकास का एक प्रारूप तैयार किया जिसे उन्होंने सोखदेवरा में मूर्तरूप में प्रस्तुत किया। इस हेतु उन्होंने ग्रामीण शिक्षा पर अपने विचारों को प्रस्तुत किया जो आज इस समस्याओं के समाधान में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

ग्रामीण शिक्षा

वास्तव में जय प्रकाश नारायण के ग्रामीण शिक्षा के बारे में जो चिन्तन रहा है वह अद्वितीय रहा है। जब जय प्रकाश नारायण 1942 के आंदोलन के समय लाहौर जेल में बंद थे तभी उन्होंने ग्राम विकास की एक रूप रेखा तैयार की जिसे उन्होंने सबके समक्ष रखा। उनका विचार था कि इस देश का विकास ग्राम-विकास के आधार पर हो। परंतु आज यह देश जहां एक महाशक्ति बनता हुआ बताया जा रहा है वहीं आज भी गांवों की दशा दयनीय है। इन समस्याओं का समाधान जयप्रकाश के ग्रामीण शिक्षा के विचारों में स्पष्ट दिखता है।

जय प्रकाश नारायण के ग्रामीण शिक्षा संबंधी विचार निम्लिखित तीन बिंदुओं पर आधारित है:

1. ग्रामीण शिक्षा का स्वरूप
2. शिक्षा एवं नौकरी
3. लोक शिक्षण

1. ग्रामीण शिक्षा का स्वरूप: वर्तमान ग्रामीण शिक्षा परम्परागत शिक्षा व्यवस्था पर आधारित है जबकि गांव की परिस्थिति शहरों से भिन्न है। वहां की समस्याएं अलग प्रकृति की है, उन्हें ध्यान में रखकर ही विशेष प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। जय प्रकाश नारायण का विचार था कि ग्रामीण शिक्षा शहर की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिए, जो उन्हें आत्मनिर्भर बना सके, ग्रामीण विकास में सहायक हो, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाए एवं सर्वोदय विचारधारा पर आधारित हो।

जय प्रकाश नारायण ने जब सोखदेवरा आश्रम की स्थापना की तो उन्होंने आश्रम में ''शिशु सदन'' के नाम से विद्यालय शुरू किया। उस क्षेत्र में जहां अभी तक शिक्षा का श्री गणेश भी नही हो पाया था, वहां उन्होंने तत्कालिक दृष्टि से परंपरागत पाठशाला के ढ़ग की एक शाला शुरू की थी। जय प्रकाश जी स्वयं अपनी आंखों के सामने ग्राम समाज की जो वास्तविक स्थिति देखते थे, उसमें आज की परम्परागत शिक्षा पद्धति उन्हें बिल्कुल ही विसंगत लगी। अतएवं इस विषय में उनका चिन्तन चलता रहा। इस चिन्तन के फलस्वरूप गांव की पाठशाला कैसी होनी चाहिए उसकी कुछ कल्पना उनके चित्त में आकर ग्रहण करने लगी। उन्होंने उसकी एक योजना तैयार कर ली।

उनके अनुसार, ''ग्राम पाठशाला यानी गांव की कोई भी पाठशाला नहीं। आज

तो शहरों और गांवों की पाठशालाओं या विद्यालयों के बीच कोई फर्क है ही नहीं। शायद नई तालीम के विद्यालयों में थोड़ा-बहुत फर्क हो। वैसे शहरों और गांवों में एक सा कार्यक्रम है इसलिए जिसको यथार्थ रूप से गांव का विद्यालय कहा जा सके, ऐसे एक विद्यालय का प्रयोग मैं सोखदेवरा में करना चाहता हूं। उसमें छोटे बच्चों, नौजवानों और प्रौढ़ों सबको शिक्षा मिले। उसका पाठ्यक्रम आज के पाठ्यक्रम से बिल्कुल भिन्न हो। गांव का यह विद्यालय आगे चलकर उच्च शिक्षा की तैयारी करने वाला विद्यालय न बने। वह स्वयं अपने आप में पूर्ण हो, यानी एक निश्चित अवधि में मूल रूप से जितना आवश्यक हो, उतना ज्ञान और उतनी शिक्षा यह सम्पूर्ण रूप से दे देने वाला हो। लड़कियों के लिए थोड़ा भिन्न पाठ्यक्रम रखा जाए। यह पढ़ाई ऐसी हो कि इसकी वजह से गांव में अधिक अच्छे किसान, अधिक अच्छे कारीगर और गांव के कामों को अच्छी तरह कर सकने वाले ग्राम वासी तैयार हो सकें।

जय प्रकाश जी ग्रामीण शिक्षा इस प्रकार की चाहते थे कि शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही उसे किसी व्यवसायिक शिक्षा में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए जिससे वह स्वावलम्बी बन सके। गांव के विद्यालय की शैक्षिक व्यवस्था ऐसी हो कि वहां से पढ़ने के बाद उसे नौकरी हेतु शहर न जाना पड़े बल्कि वह स्वयं के उद्योग गांव में स्थापित करे। इस उद्योग का स्वामित्व व्यक्तिगत भी हो सकता है, या फिर सामुदायिक भी हो सकता है जिससे कि इस देश के विकास का आधार ग्राम विकास हो सके। जय प्रकाश जी ने कहा, ''वर्तमान सड़ी हुई व्यर्थ की शिक्षा पद्धति के विरूद्ध जेहाद बोलना होगा, क्योंकि यह शिक्षा व्यवस्था एक ओर तो हमारे अधिकांश बच्चों को अशिक्षित छोड़ देती है और दूसरी ओर वह बच्चों को गलत ढंग से शिक्षित करती है। शिक्षा ऐसी हो, जो जीवनोपयोगी हो जिस शिक्षा को प्राप्त करके अपने पैरों पर खड़े हो सके, कुछ कर सके। मावो ने युवकों से कहा था कि कारखानों में, खेतों में जाओ वहां जाकर सीखो समझो वही विश्वविद्यालय है।''

जय प्रकाश जी ने ग्रामीण विद्यालय हेतु एक शैक्षणिक रूपरेखा भी तैयार की जो ग्राम विकास का आधार बन सके जो निम्नलिखित है:

''शैक्षिक रूपरेखा''-ग्रामीण विद्यालय : कृषि, ग्रामीण उद्योग, अर्थशास्त्र (सहयोग एवं सहयोगी संस्थाएं-कानून नियम संविधान) समाजशास्त्र (जो क्षेत्र के विद्यार्थियों के सहायक हो), विज्ञान, भाषा और साहित्य, ग्राम सभा (निर्णय करने की पद्धति तथा उसकी (क्रियान्विती) ग्राम-अदालत-लेखा तथा बही खाते (कृषि, व्यापार, ग्रामीण

उद्योग), स्वास्थ्य और सफाई (शौचालय, जलापूर्ति), जीवाणु एवं जीवविज्ञान (ग्रामीण ढांचे से संबंधित), बागवानी, जंतु विज्ञान, खाद्य एवं पौष्टिकता (उपलब्ध श्रोत)गैस प्लान, कम्पोस्ट, गोबर की खाद आदि शिक्षा के विषय होने चाहिए।''

परंतु ऐसा नही है कि वह शिक्षा में सिर्फ भौतिक शिक्षा की बात करते थे। इसके साथ ही वह आध्यात्मिक शिक्षा की बात भी करते थे जिससे कि लोगों के अंदर मानवीय मूल्यों का विकास हो, एवं एक सर्वोदय समाज की स्थापना हो। उन्होंने कहा कि, ''आध्यात्मवादी बने बिना अहिंसा टिक नही सकेगी बिना इस भावना के कि मैं और आप दोनों एक हैं, समाजवाद सर्वोदय आदि किस तरह स्थापित हो सकेंगे? अतएव् अध्यात्म तो अहिंसा और सर्वोदय की नीव है।''

इसलिए वह चाहते थे कि भौतिक एवं आध्यामिक शिक्षा में समन्वय होना चाहिए। उनके अनुसार, ''मानव के जीवन मूल्य में ऐसा परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना जिससे व्यक्ति हित, लोक हित से और भौतिक आकांक्षाएं आध्यामिक प्रेरणाओं से पोषित हों।''

2. शिक्षा एवं नौकरी : आज की वर्तमान परिस्थिति में हम देखते हैं कि लोगों के शिक्षा ग्रहण करने का एक मुख्य लक्ष्य है नौकरी। लोगों के इससे कोई मतलब नही है कि वह कौन सा कार्य अच्छी तरह कर सकते हैं, वह किस क्षेत्र से संबंधित शिक्षा ग्रहण कर ग्राम विकास एवं समाज के विकास में सहयोग कर सकते हैं। जय प्रकाश जी का मत था कि ग्रामीण शिक्षा ऐसी हो जो ग्रामीण उद्योग के विकास में सहायक हो, ग्राम विकास का आधार हो। शिक्षा लेने के बाद लोग नौकरी खोजते न फिरे बल्कि स्वयं का या पूरे ग्रामीण समुदाय का स्वामित्व का उद्योग स्थापित कर सकें और गांव के विकास और इस देश के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। डिग्री एवं नौकरी संबंध ही नही रहना चाहिए।

जय प्रकाश जी ने कहा,''शिक्षा में कोई मौलिक परिवर्तन तब तक संभव नहीं जब तक कि या तो 'क' उपाधियां समाप्त न कर दी जाय या 'ख' उपाधियों का रोजगार से कोई संबंध न रहे।

आज तो विद्यार्थी कुछ सीखे हों, फिर भी नाम के सामने बी.ए., एम.ए. की डिग्री हो जाने से नौकरी के लायक मान लिये जाते हैं और ज्यादा तो लोग इसलिए पढ़ते है, सीखने के लिए नहीं, क्योंकि नौकरी के लिए दरवाजा खुलता है इसलिए मेरा सुझाव

है कि नौकरियां देने वाले चाहे सरकारी क्षेत्र के हों या निजी, जिस प्रकार का काम हो उसके अनुरूप स्वयं अपनी ओर से परीक्षाएं ले सकते हैं। भर्ती के बाद आवश्यकता हो तो वे अतिरिक्त शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था कर सकते हैं''

3. लोक शिक्षण : इस देश की सबसे बड़ी विडम्बना रही है कि लोगों को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी नही रही और न इसके प्रति जागरूक रहे। इसका कारण अशिक्षा भी रही है जिसके कारण उनका निरन्तर शोषण होता रहा। आज वर्तमान परिस्थिति में जब शिक्षा का प्रसार हो रहा है तो भी स्थिति ऐसी बनी है। ऐसा नहीं कि सिर्फ अशिक्षित लोगों के साथ ही ऐसा रहा है बल्कि शिक्षित लोग भी अपने अधिकारों एवं सूचनाओं की प्राप्ति के प्रति ज्यादा जागरूक नहीं रहे। वैसे इस समस्या के समाधान के रूप में सरकार ने सूचना का अधिकार का कानून भी बना दिया है जो जय प्रकाश नारायण के लोक शिक्षण की तरफ ही पहला कदम है। जय प्रकाश जी चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त जानकारी मिलनी चाहिए, उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना चाहिए जिससे कि उनका शोषण न हो सके। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने लोक शिक्षण संबंधी अपने विचार रखे।

लोक शिक्षण का अभिप्राय है कि समस्त जनता को बच्चे, नौजवान, प्रौढ़, शिक्षित, अशिक्षित सभी को उनके अधिकारों एवं उनसे संबंधित अन्य सूचनाएं उन तक पहुंचाना एवं इसके प्रति उन्हें जागरूक करना जिससे कि उनका शोषण न हो सके और ग्राम विकास एवं इस देश का वास्तविक रूप में विकास हो सके, यह देश एक समाजवादी देश के रूप में स्थापित हो सके।

उनके अनुसार ग्रामीण शिक्षा तभी पूर्ण हो सकती है जो स्वावलम्बन और मानवीय मूल्यों (सर्वोदय) के साथ-साथ लोगों को उनके अधिकारों एवं उनसे संबंधित अन्य सूचनाएं उन तक पहुँचाएं और वे उसके प्रति जागरूक भी हो। इसलिए उन्होंने सभी शिक्षित वर्ग से अपील किया कि आप सभी लोग अपना कुछ समय लोगों के लोक शिक्षण हेतु दें। सभी लोगों के आवश्यक कार्य में लोक शिक्षण का भी कार्य हो चाहे वह अध्यापक हो या छात्र हो।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जय प्रकाश नारायण के विचारों में ग्रामीण शिक्षा का स्वरूप आज की परंपरागत शिक्षा से बिल्कुल अलग रहा है एवं जो आज की परिस्थिति

में काफी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उनके विचारों में ग्रामीण शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो लोगों को आत्म निर्भर बनाये एवं इसके साथ-साथ गांव को भी आत्म निर्भर बनाए। वह ग्राम वासियों को पूंजीपतियों की दया पर जीना नही सिखाना चाहते थे। बल्कि ग्रामीण उद्योग का विकास हो ग्राम विकास ही देश के विकास का स्वरूप हो। परंतु इसके साथ ही वह समाजवादी मानव के निर्माण हेतु सर्वोदय विचार एवं आध्यात्मिक शिक्षण का पाठ भी पढ़ाना चाहते थे, जिससे लोगों में वैचारिक परिवर्तन कर समाजवाद की स्थापना हो। वह लोगों को शोषण एवं अज्ञानता से निजात दिलाने हेतु लोक शिक्षण की भी अद्वितीय व्यवस्था चाहते थे।

सदंर्भ

नारायण, जय प्रकाश : समाजवाद से सर्वोदय की ओर, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002

नारायण, जय प्रकाश : कारावास की कहानी, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002

नारायण, जय प्रकाश : सम्पूर्ण क्रांति, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1999

नारायण, जय प्रकाश : स्वराज फार द पिपुल, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1977

नारायण, जय प्रकाश : मेरी विचार यात्रा भाग-1, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002

नारायण, जय प्रकाश : मेरी विचार यात्रा भाग-2, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी,1997

नारायण, जय प्रकाश : देश की तरूणाई को आह्वान, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 1974

नारायण, जय प्रकाश : टूवर्ड्स टोटल रिवोलूसन- सर्च फार इन आइडियोलोजी, पापुलर प्रकाशन, बाम्बे 1978

शाह, कान्ति : जय प्रकाश की जीवन यात्रा, सर्व संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002

परिप्रेक्ष्य
वर्ष 16, अंक 1, अप्रैल 2009

समीक्षालेख

विशिष्ट शिक्षा और विशिष्ट बच्चों का शिक्षा की मुख्य धारा में समावेशन

वीणा प्रसाद*

विशिष्ट शिक्षा *लेखक: **कुमार संजीव**, प्रकाशक: **जानकी प्रकाशन,** अशोक राजपथ, पटना-4, प्रथम संस्करण: 2007, मूल्य 225/-*

भारत में अन्य विकसित देशों के समान विकलांग व्यक्तियों की संख्या लगभग 2 करोड़ 19 लाख है जो कुल आबादी का 2.13 प्रतिशत है। ये व्यक्ति विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं जैसे दृष्टि बाधिता, श्रवण बाधिता, मानसिक मंदता, शारीरिक अक्षमता एवं चलन नि:शक्तता आदि से ग्रस्त हैं। ऐसे बच्चों की भी संख्या बहुत बड़ी है जो अधिगम विकलांगता, वाक् एवं भाषा अक्षमता और संवेगात्मक अशांति से ग्रस्त हैं। विशेष आवश्यकता वाले ऐसे बच्चों को समय रहते उचित शैक्षिक अवसर एवं सुविधाएं उपलब्ध करा दी जाए तो वे अपने देश के सम्मानित नागरिक के रूप में सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं। कैसे-कैसे हो सकते हैं ये विशेष आवश्यकता वाले बच्चे? कैसी है इनकी आवश्यकताएं? कैसे की जाए इनकी पहचान? और कैसे हो इनके सामाजिक शैक्षिक समस्याओं की पहचान? इन सभी ज्वलंत समसामयिक मुद्दों के शिक्षा शास्त्रीय पहलुओं पर प्रकाश डाल रही है युवा शिक्षाविद् डा. कुमार संजीव की नवीनतम पुस्तक ''विशिष्ट शिक्षा''।

इस पुस्तक में लेखक ने विशिष्ट शिक्षा से जुड़े पहलुओं को समाहित किया है। पुस्तक में कुल सत्रह अध्याय हैं। पहले अध्याय में विशिष्ट शिक्षा की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय एवं भारतीय परिप्रेक्ष्य में

* व्याख्याता, पटना ट्रेनिंग कॉलेज, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार

विभिन्न काल-खंडों में हुए इसके विकास पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्याय में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में दृष्टिगोचर होने वाली विकलांगताओं का व्योरेवार जिक्र किया गया है। विकलांगता, अंगदोष एवं निर्योग्यता सरीखे शब्दों की जुगाली करने वालों की सुविधा के लिए इन शब्दों के शब्दार्थ और भावार्थ को भी स्पष्ट किया गया है। इसके पश्चात् एक-एक अध्याय विभिन्न प्रकार के विकलांग बच्चों की शैक्षिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं और उनके समाधान के उपायों को ध्यान में रखते हुए सम्मिलित किया गया है।

तीसरे अध्याय में मंदबुद्धि बच्चों की शैक्षिक एवं पुनर्वास संबंधी आवश्यकताओं के अलावा मानसिक मंदता से जुड़ी अन्य समस्याओं मसलन माइक्रोसीफैली, हाइड्रोसीफैली, क्रेटिनिज्म, ध्यान अल्पता, अतिगतिशीलता सिंड्रोम, प्रमस्तिष्क घात आदि मसलों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। साथ ही इसके रोक-थाम, शैक्षिक पुनर्वास, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं मानसिक स्वास्थ्य उपचार के उपायों की भी चर्चा बखूबी की गई है।

चौथे अध्याय में दृष्टि अक्षम बच्चों में होने वाले दृष्टि-दोषों के अलावा 'काला मोतिया' मोतियाबिन्द, वर्णान्धता, ट्रेकोमा, कंजंक्टिवाइटिस, कार्नियल अल्सर एवं अल्बिनिज्म सरीखे नेत्र रोगों के कारण, रोक-थाम के उपायों एवं शैक्षिक पुनर्वास के उपायों को शब्दबद्ध करने की कोशिश की गई है।

पाँचवे एवं छठे अध्याय में क्रमशः श्रवण बाधित एवं अस्थि विकलांग बच्चों की शैक्षिक समस्याओं के समाधान के मुद्दों को शामिल किया गया है। वहीं सातवें अध्याय में प्रतिभाशाली एवं सृजनशील बालकों की विशेषताओं, सामर्थ्यों के अलावा उनके त्वरित शैक्षिक पुनर्वास एवं प्रशासनिक उपायों की विस्तृत चर्चा की गई है।

आठवें अध्याय में लेखक ने विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में व्याप्त अधिगम संबंधी उन शैक्षिक समस्याओं को उजागर करने का सफल प्रयास किया है जिसे अक्सर नज़रअंदाज कर दिया जाता रहा है। पढ़ने-लिखने, बोलने-चालने एवं अंकगणितीय संगणना की विकृति से ग्रस्त बच्चों की आवश्यकताओं, विशेषताओं एवं उनके उपचारात्मक शिक्षण रणनीतियों पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। नौवें एवं दशवें अध्याय में क्रमशः वाक्-भाषा विकारग्रस्त एवं संवेगात्मक अशांत बालकों के सामाजिक आक्रामकता, ध्यान संबंधी समस्या, मनोविकृति आचरण, उनके रोकथाम एवं

उनके शैक्षिक पुनर्वास के उपायों का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। वहीं ग्यारहवें अध्याय में ऑटिज्म प्रभावित बच्चों को कैसे शिक्षित किया जाए, इसका वर्णन किया गया है।

बारहवाँ अध्याय किशोर अपराधी बच्चों से संबंधित है। इस अध्याय में 18 वर्ष से कम आयु के बच्चों द्वारा किए जा रहे अवैध, अनैतिक एवं असामाजिक कार्यों की प्रकृति, कानूनी पेचिदगी, रोक-थाम एवं उपचार के उपायों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही शराबखोरी एवं औषधि व्यसन से उत्पन्न शारीरिक समस्याओं, अंत:स्त्राव एवं चपापचय संबंधी विकृति, पोषण संबंधी गड़बड़ी, मानसिक, सामाजिक, पेशागत, आर्थिक एवं विधिक समस्याओं के अलावा ऐसे बच्चों के सामाजिक एवं चारित्रिक विकृतियों की क्रमिक ढंग से व्याख्या की गई है।

तेरहवें अध्याय में शिक्षा के सार्वजनीकरण प्रक्रिया में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के समावेश के मुद्दे को उठाया गया है। वहीं चौदहवें अध्याय में लेखक ने उन शैक्षिक हस्तक्षेपों का बिन्दुवार विश्लेषण किया है जिसे विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए आवश्यक समझा। इसके अंतर्गत विशिष्ट विद्यालय, संसाधन शिक्षक, सामान्य शिक्षक, परामर्शदाता, समन्वय समूह, परिवार एवं सामुदायिक सहभागिता सरीखे अत्यंत जरूरी अवयवों को शामिल किया गया है।

पंद्रहवें अध्याय में सामान्य शैक्षिक-प्रक्रिया में हाशिये पर के उन बच्चों के समावेशन की वकालत की गई है जो विकलांग होने के चलते मुख्य धारा की शिक्षा में शामिल नहीं हो सकते हैं और स्कूली शिक्षा के बाहर रहे हैं। कैसे हो बहिराव ग्रस्त ऐसे बच्चों को शैक्षिक समावेशन? कैसे किया जाए शैक्षिक बहिराव से संघर्ष? कैसे संवेदनशील बनाए ऐसे बच्चों, अभिभावकों और शिक्षकों को? क्या को समावेशी शिक्षा का आधारभूत मॉड्ल? इन सारे सवालों की तफ्तीश करने की कोशिश की गई है इस अध्याय में।

सोलहवां अध्याय विकलांगता पुनर्वास से जुड़ा है। इस अध्याय में लेखक ने विकलांग बच्चों एवं वयस्कों के समान अवसर, अधिकारों की रक्षा एवं पूर्ण भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई राष्ट्रीय विकलांग जननीति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। साथ ही उनके पुनर्वास के लिए बनाये गये भारतीय

पुनर्वास परिषद् अधिनियम, नि:शक्त व्यक्ति अधिनियम एवं राष्ट्रीय न्यास अधिनियम सरीखे तीनों अधिनियमों के विभिन्न उपयोगी बिन्दुओं का बेवाक विश्लेषण किया गया है। साथ ही इस अध्याय में विकलांगों को मिलने वाली रियायत एवं सुविधाओं पर भी विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। सत्रहवें एवं अंतिम अध्याय में विशिष्ट शिक्षा के क्षेत्र में करियर निर्माण करने को इच्छुक व्यक्तियों के लिए बहुत सारे उपयोगी टिप्सों की चर्चा की गई है।

यह पुस्तक उन सभी व्यक्तियों, शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए उपयोगी एवं जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शैक्षिक समावेशन संघर्ष से जुड़े हैं और उनके शैक्षिक पुनर्वास आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

ISSN 0972-7515

आगामी अंक में

आलेख

अश्वनी कुमार गर्ग
प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में सर्व शिक्षा अभियान का प्रभाव

कुमार संजीव और सुधाकर प्रसाद सिंह
प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण में श्रमिक विद्यालयों की भूमिका और भावी कार्यनीतियां

शाइनी दुग्गल
भारतीय उच्च शिक्षा में दूरस्थ शिक्षा का स्वरूप और विकास

महेश कुमार मुछाल और सत्यवीर
दूरस्थ विद्यालयी शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए गणित विषय के विभिन्न शिक्षण उपागमों की उपयुक्तता

राजेश कुमार चतुर्वेदी और सीमा सिंह
छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि और उनका समग्र व्यक्तित्व

शोध टिप्पणी / संवाद

सरिता पांडेय
अध्यापक शिक्षा में प्रवेश, परीक्षा एवं मूल्यांकन प्रक्रिया

एन.पी. उनियाल और शशि किरन पांडे
उत्तराखंड में विद्यालयी शिक्षा में एड्स शिक्षा एवं जागरूकता

उषा खरे
सृजनात्मक और कम सृजनात्मक विद्यार्थियों की व्यक्तिगत मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में स्थिति

अन्य स्थाई स्तंभ